आयुष एवं आयुष शिक्षा विभाग

Ayur Tarangini

Ayur- Tarangini

AYUSH and AYUSH EDUCATIONAL Department E- Magazine

AUGUST 2024

आयुर-तरंगिणी ई-मैगजीन के पाठको के लिए संदेश

डॉ. पंकज कुमार पाण्डे (आई०ए०एस)

(सचिव, आयुष एवं आयुष शिक्षा विभाग, उत्तराखंड)

प्रिय पाठकों,

यह हमारे लिए अत्यंत गर्व और हर्ष का विषय है कि "आयुर-तरंगिणी" ई-मैगजीन के माध्यम से हम राष्ट्रीय आयुष मिशन, उत्तराखंड के उद्देश्यों और प्रगति की जानकारी आप तक पहुँचा रहे हैं। यह पहल न केवल आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, बल्कि हमारे समाज के स्वास्थ्य और कल्याण को भी नए आयाम देगी।

राष्ट्रीय आयुष मिशन, उत्तराखंड का मुख्य उद्देश्य प्रदेश में आयुष सेवाओं को सुदृढ़ और उन्नत करना है। इस दिशा में हमने कई अनूठी परियोजनाओं की शुरुआत की है, जो आयुष सेवाओं के विस्तार और जनसाधारण तक उनकी पहुँच को सुनिश्चित करेंगी।

आयुर-तरंगिणी ई-मैगजीन आयुष के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित है। इसमें औषधियों, चिकित्सा पद्धतियों, शोध आलेखों, कविताओं और समीक्षा लेखों का संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे हमारे आयुष प्रेमियों को विविध विषयों पर विस्तृत जानकारी मिल सके।

"आयुर-तरंगिणी" के इस अंक में आयुष से संबंधित विभिन्न गतिविधियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें औषधियों पर निबंध, चिकित्सा पद्धतियों पर शोध आलेख, कविताएँ और समीक्षा लेख शामिल हैं, जो आयुर्वेदिक ज्ञान के भंडार को और समृद्ध करेंगे।

मुझे विश्वास है कि "आयुर-तरंगिणी" ई-मैगजीन आयुर्वेद के प्रति आपकी रुचि और ज्ञान में वृद्धि करेगी और हमारे मिशन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

आयुर-तरंगिणी ई-मैगजीन के पाठको के लिए संदेश

डॉ. विजय कुमार जोगदण्डे, (आई०ए०एस)
(अपर सचिव एवं निदेशक , आयुष एवं आयुष शिक्षा विभाग, उत्तराखंड)

प्रिय पाठकों,

मुझे यह बताते हुए अत्यंत गर्व हो रहा है कि **"आयुर-तरंगिणी" ई-मैगजीन** का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करने का अवसर मिला है। यह हमारी एक महत्वपूर्ण पहल है, जिसे हम सभी ने मिलकर तैयार किया है, और इसमें हमारे आदरणीय सचिव महोदय **डॉ. पंकज कुमार पांडे** जी के मार्गदर्शन का विशेष योगदान रहा है।

सचिव साहब के कुशल नेतृत्व और दृष्टिकोण ने हमें प्रेरित किया कि हम आयुष के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित करें और "आयुर-तरंगिणी" इसी दिशा में हमारा एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह मैगजीन आयुष के विविध पक्षों को उजागर करती है और इसके माध्यम से हम आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों की गहरी समझ को जनसामान्य तक पहुँचाने में सफल हो रहे हैं।

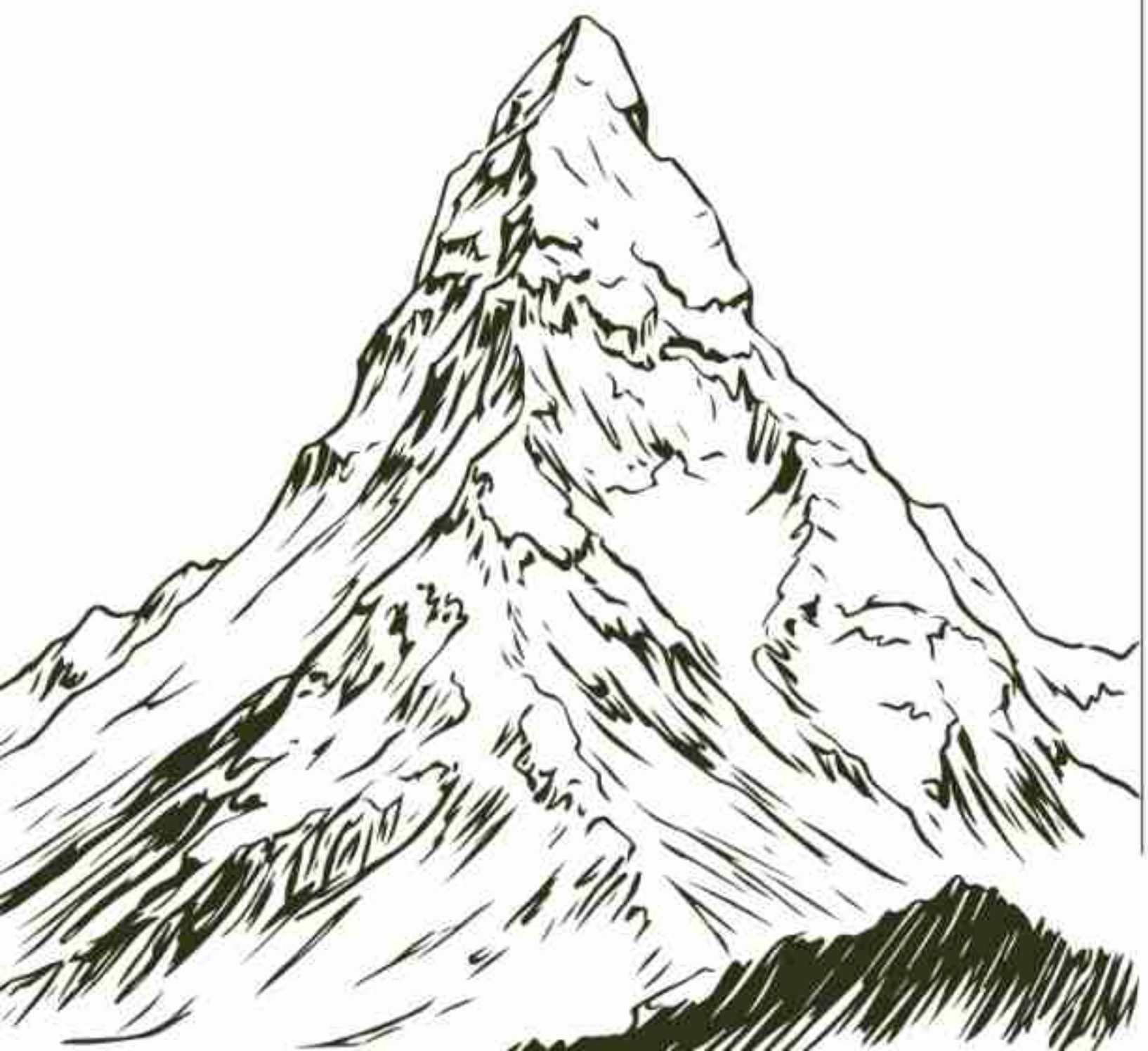

" इस पत्रिका के निर्माण में हमने विभिन्न आयुष गतिविधियों को एकत्रित किया है, जिसमें औषधियों पर निबंध, चिकित्सा पद्धतियों पर आयुष चिकित्सक द्वारा शोध आलेख, कविताएँ और समीक्षा लेख शामिल हैं। यह हमारी टीम की मेहनत और समर्पण का परिणाम है कि हम इस प्रकार का समृद्ध कंटेंट आपके समक्ष ला सके हैं।

"आयुर-तरंगिणी" के इस अंक को प्रस्तुत करते हुए, मैं अपनी पूरी टीम का धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने इसे सफल बनाने में अपना योगदान दिया। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका आपके लिए उपयोगी और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी, और आयुष के क्षेत्र में आपके ज्ञान और रुचि को और बढ़ाएगी।

Ayur Tarangini

AUGUST
EDITION

AYUSH & AYUSH EDUCATION Departmental E- Magazine

आयुष एवं आयुष शिक्षा विभाग

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ॥३॥
तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे।
(अ.हृ.सू.१.३)

आयुर्वेद अवतरण

भगवान ब्रह्मा ने स्मरण किया था आयुर्वेद महान
प्रजापति ने ग्रहण किया जिसका सम्पूर्ण ज्ञान॥
फिर प्रजापति ने अश्विनो को ज्ञान व्याख्यान
तब उपदेशों की रूप आया वेद इंद्र के पास॥

मचा था हाहाकार, रोग से पीड़ित हर जन मानव था
जब रोगों को हरने वाला न कोई जग में साधन था॥
तब शालीन यायावर ऋषियों ने पर्वत पर ध्यान किया
ध्यान लगाकर मुनियों ने इसका समाधान किया॥

समाधान ये था के देवराज के पास है ज्ञान महान
प्रश्न उठा के कौन इंद्र से ग्रहण करे ये ज्ञान॥
प्रश्न उठा किसको चुन ले, है कोन बुद्धि बलवान
किया नियुक्त भरद्वाज महर्षि परम विद्वान॥

भरद्वाज जी जा पहुंचे सहस्त्राक्ष के पास
तब देवराज ने सूत्र रूप में दिया वेद उपहार॥
अब अड़चन थी ज्ञान तो था, पर था ये सूत्र स्वरूप
देना था इन उपदेशों को शीघ्र तंत्र का रूप॥

फिर अग्निवेशादि ऋषियों ने तंत्रों का निर्माण किया
इन ग्रंथों को आगे चलकर संहिताओं का नाम दिया॥

अब दायित्व हमारा है हो आयुर्वेद प्रसार
आयु का विज्ञान, जय जय आयुर्वेद महान॥

आयु का विज्ञान, जय जय आयुर्वेद महान॥
आयु का विज्ञान, जय जय आयुर्वेद महान॥

मोहम्मद अक़दस
(आयुर्वेद संकाय, मुख्य परिसर, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय)

चरक की महिमा

शेषनाग का रूप मानें
या जन्म को बोलें चमत्कार
देह रूप में प्रकटे कपिस्थल ग्राम में
कृष्ण यजुर्वेद के टीकाकार

सही में चरक की महिमा है अपार

वैशम्पायन के शिष्य,
भगवान अनन्त के अवतार;
याज्ञवल्क्य के सतीर्थ्य,
पिता विशुद्ध की करवाई जय-जयकार

सही में चरक की महिमा है अपार

वैद्य को बताया प्रथम
पर छद्मचर का भी किया पर्दाफाश
8 स्थान, 120 अध्यायों में
किया संहिता का उचित विकास

सही में चरक की महिमा है अपार

7 संभाषा, 68 ऋषि संग
बृहत्त्रयी की प्रथम संहिता के रचनाकार
आतुरालय का भी किया वर्णन
आचार रसायन को बताया पहली बार

सही में चरक की महिमा है अपार

कुषाणवंशीय राजा कनिष्क के राजवैद्य
फिर भी तनिक न अहंकार
यायावर कोटि के ऋषि
अग्निवेशतंत्र प्रतिसंस्कृत कर किया कलियुग का उद्धार

सही में चरक की महिमा है अपार

अरुण जैन
(ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय)

औषधीय पौधे: प्रकृति का उपहार

आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है और इस जीवन को सुंदर बनाने के लिए प्रकृति का एक बहुत महत्वपूर्ण योगदान होने के कारण इसे "प्रकृति द्वारा चिकित्सा" भी कहा जा सकता है। सम्पूर्ण शरीर और मन को स्वस्थ और तंदुरुस्त रखने के लिए प्रकृति में उपलब्ध औषधियां पौधों का उपयोग किया जाता है जिनमें रोगों को ठीक करने के लिए दवाइयों के समान गुण होते हैं।

दैनिक जीवन में चाय बनाने के लिए प्रयोग होने वाली तुलसी हृदय रोग, अपच, सर्दी, खांसी आदि में हितकारी होती है। केवल यही नही, इस पवित्र पौधे को जहां घर-घर में पूजा जाता है वही दूसरी ओर इसमें एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटीबैक्टीरियल गुण पाए जाते हैं। आधुनिक जीवन में माउथवॉश का प्रयोग मुँह में ताजगी बनाने के लिए किया जाता है पर यही माउथवॉश जलन, छाले आदि उत्पन्न करके हानि पहुँचा सकता है इसलिए प्राचीन समय में नीम और बबूल से बना दातुन दांतों और मसूड़ों को स्वस्थ रखता था। मलेरिया, मधुमेह, नेत्र विकार जैसे रोगों के लिए भी नीम लाभदायक है।

- धनिया: अपच, पेट फूलना, ऐंठन दर्द
- पुदीना: पेट के रोग, बुखार, दस्त, लीवर
- एलोवेरा: अल्सर, जले हुए घावों और पीलिया
- आंवला: एंटीऑक्सीडेंट, तनाव-रोधी, बुखार, खांसी, टीबी
- पान: खांसी, सांसों के रोग, फाइलेरिया

आदि जैसे पौधे भी अपने औषधीय महत्व से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार करते हैं। हल्दी और चंदन जैसी औषधियां रोगाणुरोधक का कार्य करते हुए घाव पर मरहम का कार्य करती है।

कोरोना काल में गिलोय, अश्वगंधा जैसे पौधों का इस्तेमाल कर लोगों ने इस महामारी से अपना बचाव भी किया। आयुर्वेदिक औषधियों का न्यूनतम या लगभग कोई शरीर और मन पर दुष्प्रभाव नही होता अथवा यह लंबे जीवन काल व रोग को जड़ से खत्म करने का बखूबी कार्य करते हैं। यह अंग विशिष्ठ रोगों को ठीक करने के साथ-साथ पूरे शरीर का विषहरण भी करते हैं। पाचन और अवशोषण जैसे शारीरिक कार्य , आम स्वास्थ्य समस्याएं जैसे बाल झड़ना, मोटापा, त्वचा संबंधी रोग आदि का समाधान भी प्रकृति के इस अद्वितीय संदूक में मौजूद हैं।

मनुष्य के लालच ने आज उसे प्रकृति का एक अपराधी बना दिया है जिसके कारण इनके बीच के प्राकृतिक संबंध के धागे में गाँठ पड़ चुकी है। हर व्यक्ति को प्रकृति की इस खूबसूरत भेट का आदर करते हुए अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इन आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन विशेष रूप से करना चाहिए।

वंशिका अग्रवाल
(गुरुकुल राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज,
उत्तराखण उत्तराखण आयुर्वेद विश्वविद्यालय)

लहसुन

महिलयों के लिए वरदान

लहसुन (Allium sativum)

लिलीएसी (Liliaceae) परिवार का एक सदस्य है, जिसे भारतीय परंपरा में एक मूल्यवान मसाले और विभिन्न बीमारियों के उपचार के लिए एक लोकप्रिय उपाय के रूप में जाना जाता है। वेदों, आयुर्वेदिक ग्रंथों जैसे चरक संहिता और सुश्रुत संहिता आदि में इसके अनेकानेक संदर्भ मिलते हैं और बाद में यहां तक कि हिप्पोक्रेट्स ने भी अपने चिकित्सा साहित्य में लहसुन का उल्लेख किया और विभिन्न बीमारियों के उपचार में इसके उपयोग का वर्णन किया है। यह लंबे समय से भारतीय आहार का हिस्सा रहा है। लहसुन को लंबे समय से चीनी स्वास्थ्य प्रदाताओं द्वारा भी जाना जाता था और यह आज भी हमारे आहार और चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह मिस्र, यूनान, रोमन और अफ्रीकी आहार में भी प्रमुखता से शामिल है और कई सामान्य बीमारियों के लिए एक औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है।

लहसुन की ऐतिहासिक समीक्षा

लहसुन का उपयोग भारतीय पाक कला में खाद्य योजक के रूप में और एक अद्भुत औषधि के रूप में किया जाता है। इसमें कटु प्रधान अम्ल रहित पंच रस होते हैं, गुण जैसे स्निग्ध, उष्ण, सर, गुरु, तीक्ष्ण, पिच्छिल हैं। यह उष्ण वीर्य और कटु विपाकी (मधुर – कश्यप) होता है और इसमें वात कफ-हर गुण होते हैं। इसकी उपयोगिता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि आचार्य कश्यप ने इसके विस्तृत चिकित्सकीय पहलू को काश्यप संहिता में एक अलग अध्याय लहसुन कल्पाध्याय में वर्णित किया है, जहां महिलाओं के विकारों में लहसुन को विशेष औषधि के रूप में वर्णित किया गया है।

लहसुन के बारे में बिखरे हुए संदर्भ विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध हैं जैसे वेदों में, वैखानस धर्मशास्त्र, वराह-धर्मशास्त्र इत्यादि में। लॉयड हैरिस ने "द बुक ऑफ गार्लिक" में दावा किया है कि लहसुन का उपयोग 4500 ईसा पूर्व से है। इसे चीन, मिस्र और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा विभिन्न बीमारियों के उपचार के लिए औषधि के रूप में उपयोग किया गया था। यह भारत में केवल 200 साल बाद आया। इसे भारत में ज्यादातर विदेशी आक्रमणकारियों ने लाया था इसलिए इसे म्लेच्छकंद कहा जाता है। लहसुन का उल्लेख लगभग सभी आयुर्वेदिक ग्रंथों में मिलता है, जैसे कि बृहतत्रयी, लघुत्रयी और सभी निघंटु आदि में। आयुर्वेदिक साहित्य जैसे चरक, सुश्रुत, कश्यप और अष्टांग संग्रह इत्यादि लहसुन को एक उपयोगी औषधि और खाद्य वस्तु के रूप में इंगित करते हैं। बाद में निघंटुयों ने भी लहसुन के आहार और औषधि के रूप में विशिष्ट उपयोग का वर्णन किया। लहसुन का बृहतत्रयी में व्यापक रूप से वात रोग चिकित्सा और रसायन के लिए उल्लेख किया गया है, लेकिन इसे उनके किसी भी गण या वर्ग में शामिल नही किया गया है। लहसुन का उल्लेख अमरकोष में वनौषधि वर्ग के तहत किया गया है। लहसुन का वर्णन अथर्व परिशिष्ट में भी मिलता है।

पौराणिक कथाएं

लहसुन के बारे में कुछ पौराणिक कहानियां हैं:

कश्यप संहिता के अनुसार, लहसुन इंद्राणी द्वारा गलती से पृथ्वी पर गिराए गए अमृत का परिणाम है। उस कहानी के अनुसार, इंद्राणी 100 वर्षों के बाद भी गर्भ धारण करने में असमर्थ थी, इंद्र ने अमृतपान के लिए उसकी सहायता की और उसे पीने के लिए, उसे पास से पकड़ा और सांत्वना दी। सुकुमारी इंद्राणी ने अमृतसार प्राप्त किया और पति की उपस्थिति में उसे लज्जा महसूस हुई और उसे उद्गार (डकार) आ गया, जिससे अमृत पृथ्वी पर अपवित्र स्थान पर गिर गया। गिरा हुआ अमृत पृथ्वी पर लहसुन के रूप में अस्तित्व में आ गया। इसके बाद इंद्र ने इंद्राणी को बताया कि उसके बहुपुत्र होंगे। लेकिन स्थान दोष के कारण, इसमें दुर्गंध है और इसे द्विजों (ब्राह्मणों) द्वारा नहीं खाया जाता है।

समुद्र मंथन के दौरान, अमृत चोरी हो गया और राहु द्वारा पिया गया। भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से उसकी गर्दन काट दी, जिससे सिर के साथ गर्दन पृथ्वी पर गिर गई, जिसके दौरान अमृत कण पृथ्वी पर गिर गए और लहसुन के रूप में अस्तित्व में आ गए। चूंकि उस अमृत का स्पर्श दैत्य (दानव) के शरीर से हुआ था, इसमें दुर्गंध है और इसमें कुछ गुण अमृत के समान हैं जैसे रसायन आदि।

कश्यप संहिता के अनुसार लशुन के गुण व कर्मः

इसके गुण अमृत और रसायन के समान हैं। लहसुन के सेवन से दांत, मांस, नाखून, दाढ़ी, केश, वर्ण, अवस्था और बल कभी क्षीण नहीं होते। लहसुन का सेवन करने वाली महिलाओं में स्तनों की शिथिलता नहीं होती और वे रूप, संतान, बल और आयु प्राप्त करती हैं। उनका सौभाग्य और यौवन बढ़ता है। लहसुन का सेवन करने से स्त्रियां शुद्धि प्राप्त करती हैं और ग्राम्य धर्म (व्यवाय) के कारण होने वाले रोगों से बची रहती हैं। वह कमर, कूल्हे और अन्य अंगों से संबंधित रोगों से मुक्त रहती हैं और कभी बांझपन और अप्रिय दर्शन से पीड़ित नहीं होती। पुरुष दृढ़, मेधावी, दीर्घायु, सुंदर और संतानों से युक्त होते हैं। लहसुन के सेवन से शुक्र धारण और वृद्धि होती है। रोगी वृष्यता, शरीर की मृदुता और कंठ की माधुर्यता को प्राप्त करते हैं। इसके प्रयोग से ग्रहणी दोष भी ठीक होते हैं। आधुनिक/वैज्ञानिक दृष्टि की शोध के अनुसार महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए लहसुन के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

1) प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाना: लहसुन में मौजूद एंटीऑक्सिडेंट्स और एंटीबैक्टीरियल गुण प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में मदद करते हैं, जिससे महिलाएं बीमारियों से बेहतर ढंग से लड़ सकती हैं।

2) हार्मोन संतुलनः लहसुन का सेवन हार्मोनल असंतुलन को ठीक करने में सहायक होता है, जो महिलाओं में मासिक धर्म चक्र और प्रजनन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।

3) रक्तचाप नियंत्रणः लहसुन उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने में मदद करता है, जो हृदय संबंधी समस्याओं से बचाव करता है। महिलाओं में रक्तचाप नियंत्रण हृदय स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

4) संक्रमणों से बचावः लहसुन का नियमित सेवन यौन और मूत्र मार्ग संक्रमणों को रोकने में मदद कर सकता है, जो महिलाओं में आम समस्याएं हैं।

5) पाचन स्वास्थ्यः लहसुन पाचन तंत्र को बेहतर बनाने में मदद करता है, जिससे गैस, बदहजमी और पेट के अन्य विकारों से राहत मिलती है।

6) एंटीऑक्सिडेंट गुणः लहसुन में उपस्थित एंटीऑक्सिडेंट गुण त्वचा की चमक बनाए रखने और जरा (उम्र बढ़ने की प्रक्रिया) को धीमा करने में सहायक होते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार रोग की पहचान और उपचार उसके लक्षणों प्रकृति और कारणों के आधार पर किया जाता है। उच्च रक्तदाब (हाइपरटेंशन) को आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से समझना और प्रबंधित करना संभव है जिसमें इसे दोषों और मानसिक कारकों से जोड़ा जाता है।

डॉ० अंजना टाक
एसोसियेट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
(प्रसूति तंत्र एवं स्त्री रोग विभाग)
(आयुर्वेद संकाय, मुख्य परिसर, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय)

उच्च रक्तदाब

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण

रक्तदाब को आयुर्वेद में सीधे एक रोग के रूप में नही माना जाता। हल्के और मध्यम रूपों में कोई विशेष लक्षण नही होते लेकिन गंभीर मामलों में हृदय मस्तिष्क और गुर्दों को प्रभावित कर सकता है। इसे हृद्रोग और पक्षाघात के रूप में देखा जा सकता है।

आयुर्वेद में उच्च रक्तदाब के कारणों को निदान पंचक के माध्यम से समझा जाता है। वात पित्त कफ और रक्त दोष इस स्थिति के प्रमुख कारण होते हैं। मानसिक कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि मन का असंतुलन भी रक्तदाब को प्रभावित करता है।

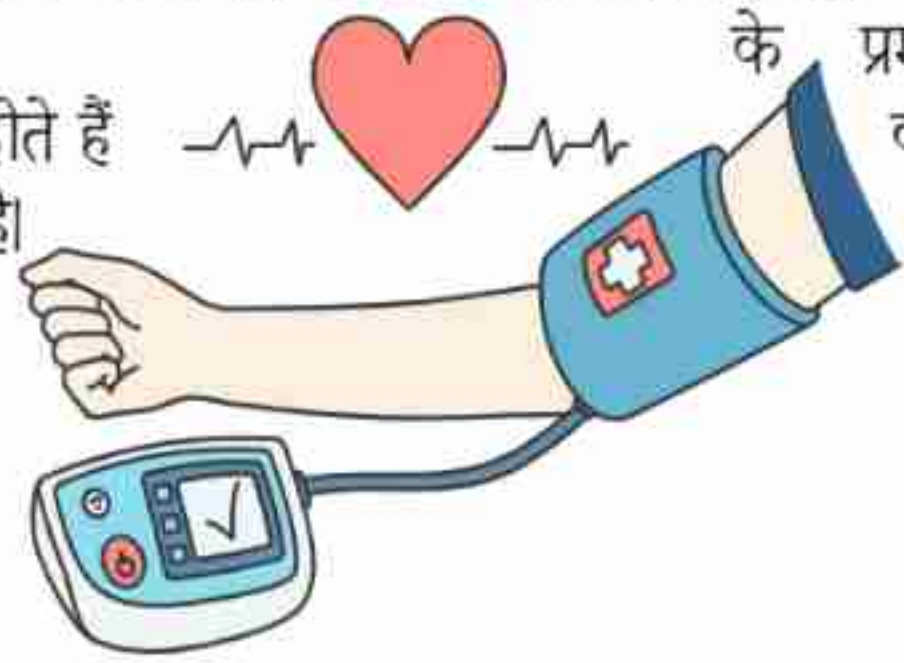

उच्च रक्तदाब की पहचान और नामकरण

आयुर्वेदिक ग्रंथों में उच्च रक्तदाब को - रक्तदाब ; रक्तभर और & व्यान वायु वृद्धि, जैसे नामों से जाना जाता है। व्यान वायु हृदय और रक्तवाहिनियों से जुड़ी समस्याओं से संबंधित होता है और इसे इस स्थिति में प्रमुख भूमिका में देखा जाता है।

आयुर्वेद का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा है और इसके ग्रंथों में हृदय और रक्तवाहिनियों का उल्लेख मिलता है। हालांकि आधुनिक अवधारणा के अनुसार इसे सीधे एक रोग के रूप में नही पाया गया है।

उच्च रक्तदाब के आयुर्वेदिक उपचार

1. पंचकर्म

o विरेचन पित्त को संतुलित करता है और रक्त प्रवाह में सुधार लाता है।

o वस्ती वात को नियंत्रित करता है और हृदय की कार्यक्षमता में सुधार करता है।

o रक्तमोक्षण दूषित रक्त को निकालता है और रक्त परिसंचरण में सुधार करता है।

o तक्रधारा ठंडे घी की धाराओं से तनाव और उच्च रक्तदाब में राहत मिलती है।

o क्षीरधारा औषधीय दूध की धाराओं से स्नान शरीर और मन को ठंडक प्रदान करता है।
o तैलधारा औषधीय तेल की धाराओं से शरीर को विश्राम मिलता है और रक्तदाब नियंत्रित होता है।

2. औषधीय हर्ब्स

o अश्वगंधा सर्पगंधा अर्जुन ब्राह्मी त्रिफला और लहसुन ये हर्ब्स तनाव कम करने विश्राम को प्रोत्साहित करने और रक्त परिसंचरण में सुधार लाने में सहायक हैं।

जीवनशैली में सुधार

संतुलित आहार वजन प्रबंधन नियमित शारीरिक गतिविधि योग धूम्रपान और शराब का परित्याग और तनाव प्रबंधन उच्च रक्तदाब की रोकथाम और नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन परिवर्तनों को अपनाना रक्तदाब को कम करने और समग्र स्वास्थ्य में सुधार करने में सहायक होता है।

आयुर्वेद में उच्च रक्तदाब का प्रबंधन एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। पंचकर्म औषधीय हर्ब्स और जीवनशैली में सुधार के माध्यम से आयुर्वेद एक प्रभावी समाधान प्रदान करता है जो हृदय स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है।

डॉ० मनीषा (पीजी छात्रा)
द्वितीय लेखक- डॉ० पूनिता पांडे (प्राध्यापक)
गुरुकुल राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

दद्रु में पथ्य-अपथ्य सेवन

त्वचा मानव शरीर की सबसे बाहरी लेयर है जो की इसे बहुत से विकारों के लिए संवेदनशील बनाती है | वर्तमान समय की जीवन शैली और आहार इसमें उत्प्रेरक का कार्य करता है | इनमे से एक व्याधी है दद्रु | यह पित्त-कफ प्रभुत्व के साथ एक चिरकालज (पुरानी) त्वचा विकार है | दद्रु शरीर के अन्य भागों में बहुत आसानी से फैलता है। इसे हम रिंग वर्म संक्रमण कह सकते हैं |

आयुर्वेद की मूल अवधारणा है **" स्वास्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं "** ; यानी एक स्वस्थ व्यक्ति को रोगमुक्त रखना |. लेकिन आजकल के समय में कोई भी व्यक्ति पूरी तरह से स्वस्थ नही है। वर्तमान युग में त्वचा रोग बहुत आम हैं, जिनमे से मुख्य है कुष्ठ रोग| आयुर्वेद में अधिकांश चर्म रोगों को कुष्ठ व्याधि के अंतर्गत माना गया है। दद्रु इसका एक उप प्रकार है। यह पित्त-कफ प्रधान एवं रक्त प्रदोषज व्याधि है जहां त्वक- रक्त-मांस- अम्बु मुख्य दूष्य हैं | दद्रु के लक्षण है – कंडू, राग, दाह एवं पीडिका | यह रोग कृछरसाध्य है एवं रोगी कुछ समय बाद दवाओं के प्रतिरोधी भी हो जाते हैं। इसलिए उचित सावधानी और निवारक उपाय किए जाने चाहिए। निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए-

- निदान परिवर्जन
- उचित स्वच्छता बनाई रखी जानी चाहिए।
- प्रभावित क्षेत्र या भाग नमी रहित या पूरी तरह सूखा होना चाहिए।
- अपने नाखूनों को छोटा और साफ रखें।
- ऐसे कपड़े और जूते चुनें जिनमे हवा का आदान- प्रदान होता रहे।
- अपने आहार में प्रोबायोटिक्स शामिल करें।
- लघु और तिक्त आहारा का सेवन करे| जैसे- परवल, नीम,इत्यादि
- पालतू जानवरों के साथ खेलने के बाद अपने हाथों को साफ पानी या साबुन से धोएं।

जिन चीजों से बचना चाहिए-

- प्रभावित हिस्से को खरोंचने या खुजली करने से बचना चाहिए।
- रोगी के कपड़े अलग से धोने चाहिए।
- प्रभावित व्यक्ति को पित्त और कफ वर्धक आहार से दूर रहना चाहिए।
- कपड़े, तौलिये और अन्य व्यक्तिगत वस्तुओं को साझा नही किया जाना चाहिए।
- डॉक्टर से परामर्श किए बिना स्टेरॉयड क्रीम का उपयोग न करें। यदि आपको कोई फंगल संक्रमण दिखाई देता है तो डॉक्टर से संपर्क करना सबसे अच्छा है।
- नंगे पैर न चलें क्योंकि फंगस सतहों पर बहुत लंबे समय तक रहता है।

जोखिम कारक-

- सार्वजनिक शावर का उपयोग करना
- स्वच्छता का ध्यान ना रखना
- अत्यधिक पसीना आना
- जानवरों के साथ संपर्क
- वजन अधिक होना
- रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना

"यदि हम सद्वृत्त और विशिष्ट पथ्य अपथ्य का पालन करते। हैं तो यह त्वचा रोग की रोकथाम में मदद करेगा"

डॉ. किरन चमोली 1 डॉ. ओ. पी. सिंह 2 डॉ. एस. के. त्रिपाठी 3
1 पी.जी. स्कॉलर 2 प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष 3 प्रोफेसर
काय चिकित्सा विभाग ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

शरद ऋतु में आहार विज्ञान और जीवन शैली

शरद ऋतु में, लंबे समय तक बारिश होने के कारण, प्रदूषक धूल और अन्य ठोस और गैसीय पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं और वातावरण भी साफ हो जाता है। आकाश और वातावरण की इस स्पष्टता के कारण सूर्य की किरणें तीव्र और चमकदार होती हैं।

शरद ऋतु में न सूर्य की गर्मी बहुत तेज होती है। इससे ब्रह्मांड में पित्त दोष दूषित होता है। आयुर्वेद में हर दोष के साल भर में तीन चरण होते हैं, एक ऋतु या मौसम में हर दोष हमारे शरीर और बाहरी दुनिया में एकत्र होना शुरू हो जाता है, दूसरी ऋतु में यह बढ़ जाता है और तीसरी ऋतु में यह कुपित जाता है।

पित्त दोष के लिए, मानसून का मौसम संचय के लिए है। इसका मतलब है, इस मौसम में पित्त दोष हमारे शरीर और बाहरी दुनिया में स्वाभाविक रूप से जमा होना शुरू हो जाता है और यह पूरे मानसून में आपके स्वास्थ्य कुपित करना शुरू कर सकता है, लेकिन यह इसे गंभीर संकट में नही डालेगा। इस मौसम में आपको परहेज करना चाहिए, अम्लीय गुणों से भरपूर खाद्य पदार्थ और पित्त को बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थों से।

शरद ऋतु में जैसा कि पहले कहा कि कैसे सूर्य पृथ्वी के तापमान को बढ़ना शुरू कर देता है और प्राणियों में भी पित्त दोष को बढ़ाता है और विभिन्न त्वचा, रक्त, बाल और पाचन संबंधी विकारों के लक्षण उत्पन्न करता है।

पित्त प्रकृति व्यक्ति को वात या कफ प्रकृति के व्यक्ति की तुलना में शरद ऋतु में अधिक सचेत रहने की आवश्यकता है। इनमें त्वचा की एलर्जी, एक्जिमा, पित्ती, बालों का बढ़ना बहुत आम है। इस मौसम में पित्त दोष, गैस्ट्राइटिस, चिड़चिड़ापन, हथेलियों और पैरों में जलन, सिरदर्द आदि हो सकता है। वैसे तो आने वाला सर्दी का मौसम पित्त को शांत करने वाला ऋतु है, लेकिन सर्दी के मौसम में पित्त को दबाने वाला प्रभाव पिछली ऋतु में हुई गड़बड़ी की गंभीरता पर निर्भर करता है, ,

लेकिन यदि आप पित्त प्रकृति के व्यक्ति के पित्त अधिक दूषित हो जाने पर औषध और पंचकर्म (विरेचन) उपचार द्वारा करने की आवश्यकता है। आयुर्वेद के अनुसार शरद ऋतु में विरेचन कर्म करना सबसे अच्छा होता है।

क्योंकि इस मौसम में स्वाभाविक रूप से शरीर के गहरे ऊतकों से अधिकतम पित्त दोष को बाहर निकालना आसान हो जाता है। पित्त प्रकार के व्यक्ति को अपने आहार और जीवनशैली को हमेशा पित्त को शांत रखना चाहिए। इससे उसका पित्त शांत रहेगा ,दोष हमेशा संतुलन में रहते हैं। शरद ऋतु में, व्यक्ति को क्षारीय प्रकृति वाले खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों का सेवन करना चाहिए जो शीतलता या सुखदायक प्रभाव पैदा करते हैं। कद्दू, करेला, लौकी, खीरा, प्याज और इलायची जैसी सब्जियों का सेवन करें। सुबह खाली पेट एक या दो चम्मच गाय का घी ले सकते हैं। मिश्री, पेठा, गुनगुना या
ठंडा गाय का दूध, गेहूं, चावल, तक्र या छाछ आदि। शरऋतु में त्याज्य आहार-विहार शरऋतु में धूप का सेवन, वसा ,ओस, मांस मछली आदि,आनूप मांस का, क्षार, दही का सेवन और दिन का-शयनय एवं पूर्वी वायु का सेवन नही करना चाहिए

डॉ० सोनम रावत (पीजी छात्रा)
द्वितीय लेखक- डॉ० दिनेश कुमार गोयल (प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष
कायाचिकित्सा विभाग,)
गुरुकुल राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज, उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

आमवात

आज के तनाव पूर्ण जीवन शैली में, खराब आहार और विहार के कारण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर मानव जीवन में बहुत परेशानियाँ पैदा होती है | इससे अग्नि की विकृति हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप आम का निर्माण होता है। अधिकांश रोग मंदाग्नि के कारण होते हैं। आमवात उनमें से एक है। आम और वात इस रोग में सबसे प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आमवात एक ऐसी बीमारी है जिसमें दूषित आम दोष कई अंगों और संधियों में जाकर सूजन, अकड़न और चुभन उत्पन्न करता है | आमवात को आधुनिक चिकित्सा के अनुसार रूमेटॉइड आर्थराइटिस के रूप में भी जाना जा सकता है |

आमवात मध्यम रोग मार्ग की एक बीमारी है, इसलिए इसे कृच्छसाध्य या याप्य कहा जाता है। यह एक विशिष्ट प्रकार की बीमारी है जिसे आचार्य माधवकर के समय से आयुर्वेद में वात-कफज विकार की श्रेणी के तहत वर्गीकृत किया गया है|

चूँकि आमवात मुख्य रूप से मंदाग्नि के कारण होती है, इसलिए इसकी चिकित्सा करने के लिए आम को पूरी तरह से नष्ट करने की आवश्यकता होती है।

निदान –

आचार्य माधवकर ने आमवात के निदान का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

1. विरुद्ध आहार- अस्वास्थयकर खाद्य पदार्थो का एक मिश्रण जो दोषों कि विकृति करता है और शरीर को उन्हें बाहर निकालने से रोकता है, उसे विरुद्ध आहार कहा जाता है।
2. विरुद्ध चेष्टा- शरीर के नियमित कर्मो को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सभी गतिविधि को विरुद्ध चेष्टा के रूप में जाना जाता है।
3. मन्दाग्नि- मंदाग्नि हर बीमारी का मूल कारण है। आम मंदाग्नि के परिणामस्वरूप बनता है, रक्त में प्रवाहित होता है और वात के साथ जुड़ जाता है।
4. निश्चलता - निश्चलता कफ वृद्धि का कारण बनती है, जिसके परिणामस्वरूप अग्नि मंद होती है। यह दोषों का विक्षेपण और आम का निर्माण करता है
5. स्निग्ध भुक्त्वतो व्यायामं- स्निग्ध आहार, जो गुरु भी है, अग्नि को दूषित कर देता है और आम उत्पन्न करता है। इसके विपरीत, स्निग्ध भोजन के तुरंत बाद व्यायाम, संधियों में ख वैगुण्यता और वात को कुपित कर देता है।

लक्षण-

अंगमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, गौरवता, ज्वर, अपाक, अंगों में शूनता, संधि शूल, संधि शोथ, स्तब्धता, स्पर्श असह्यता ये प्रमुखतः आमवात के लक्षण है |

संप्राप्ति –

पाचन तंत्र कि विकृति के कारण जब व्यक्ति असंगत आहार और विहार और पहले वर्णित अन्य निदानों में लिप्त होता है तो आम का निर्माण होता है, जो वात द्वारा संचालित होता है और श्लेष्मा स्थान जैसे आमाशय, अस्थि, संधि आदि तक पहुंचता है। आम विभिन्न रोगो को उत्पन्न करता है और छोटे स्रोतो में जमा हो जाता है | जब यह आम एक साथ श्रोणि और कंधे और अन्य संधियों को प्रभावित करता है, तो इस स्थिति को आमवात के रूप में जाना जाता है।

चिकित्सा सिद्धांत-

"लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानिकटूनि च |
विरेचनं स्नेहपानं बस्त्याश्चाममारुते ||
सैन्धवाधेनानुवास्य क्षारबस्तिः प्रशस्यते ||"
- (चक्रदत्त २५/१)

आचार्य चक्रदत्त ने आमवात के चिकित्सा सूत्र का उल्लेख किया है, उनका कहना है कि लंघन, स्वेदन, दीपन और कटू द्रव्यों का उपयोग, विरचन, स्नेहपान और सेंधवादि अनुवासन के साथ- साथ क्षार बस्ति भी आमवात के लिए फायदेमंद हैं।

डॉ० आयशा (पीजी छात्रा)
डॉ. संजय कुमार त्रिपाठी (प्रोफेसर) , डॉ. ओ. पी. सिंह (प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष)
, डॉ. श्वेता शुक्ला (सहायक प्रोफेसर)
कायचिकित्सा विभाग, ऋषिकुल परिसर, राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

ग्रहणीरोग

मे आहार और जीवनशैली परिवर्तन : एक समग्र दृष्टिकोण

आधुनिक युग में जिसमें फास्ट फूड और अस्वस्थ आहार प्रथाओं का बढ़ता चलन है साथ ही साथ निष्क्रिय जीवनशैली, अपर्याप्त व्यायाम, देर रात की नींद और बढ़ते तनाव स्तर, पाचन तंत्र को बाधित कर रहे हैं। जंक और फास्ट फूड ग्रहणी रोग के प्रमुख कारण हैं।

परिचय –

ग्रहणी रोग एक अस्वस्थता है जिसमें रोगी भोजन को ठीक से पचाने में असमर्थ होता है और उसे बार-बार अपच या पचे हुए रूप में बिना दुर्गंध के बाहर निकाल देता है। रोगों की उत्पत्ति रोगविज्ञान के अनुसार अपचित भोजन के कारण होती है, जो आगे चलकर अग्नि और दोषों को विकृत करता है, जिसके परिणामस्वरूप आम का निर्माण होता है। मन्दाग्नि, आमदोष का मूल कारण है और इसके परिणामस्वरूप ग्रहणी रोग होता है।

आहार का उद्देश्य:

1. अग्नि को साम्यावस्था में लाना, जिससे ग्रहणी के कार्यों का अनुकूलन हो सके।
2. आम के संचय को कम करना।
3. मल की आदतों को सामान्य बनाना।
4. समग्र पोषण को बढ़ाना ताकि व्यक्ति की समग्र स्वास्थ्य में सुधार हो।

ग्रहणी में तक्र प्रयोग का महत्व:

ग्रहणी (इरिटेबल बाउल सिंड्रोम) के उपचार में तक्र (मट्ठा) का उपयोग। आयुर्वेद में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। तक्र को दीपन (पाचन को उत्तेजित। करने) गुणों के लिए जाना जाता है और यह पचने में लघु (हल्का) होता है, जो अग्नि (पाचन अग्नि) को सुधारने में सहायक होता है। ग्रहणी के प्रबंधन। और उपचार में, जीवन शैली में संशोधन और संतुलित आहार योजना का पालन, पथ्य और अपथ्य (उचित और अनुचित) पर विचार महत्वपूर्ण हैं।

आहार समायोजन:

1. पोषक आहार की ओर बदलाव से मजबूत अग्नि (पाचन अग्नि) का विकास होता है और यह ग्रहणीरोग के खिलाफ सुरक्षा करता है।
2. नियमित अंतराल पर भोजन करना सलाह दी जाती है।
3. आहार से जंक फूड, एलर्जन और पचने में कठिन खाद्य पदार्थों को हटा दें।
4. आयुर्वेद एक संतुलित आहार की सलाह देता है जो संस्कारजन क्रम पर आधारित होता है, जो व्यक्ति की प्रकृति (संरचना) के अनुसार होता है। जिन लोगों को ग्रहणी है, उन्हें इस आहार दृष्टिकोण का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

व्यवहार संशोधन:

1. भय, दुख, तनाव और अनिद्रा जैसे व्यवहारिक पहलू ग्रहणी के लक्षणों को प्रकट कर सकते हैं। इसलिए, तनाव, भय और दुख से दूर रहना सलाहकारी है ताकि अवसाद की शुरुआत से बचा जा सके, जो अग्नि (पाचन अग्नि) को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है।
2. सकारात्मक और उत्साही दृष्टिकोण बनाए रखना सामान्य चयापचय कार्यों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।
3. अत्यधिक सोच या ;चिंतन ; की आदतों से बचना चाहिए, क्योंकि ये पाचन प्रक्रिया को रोक सकते हैं। लंबे समय तक मानसिक गतिविधि रक्त प्रवाह को मुख्यतः मस्तिष्क की ओर निर्देशित करती है, आंतों की ओर नही।
4. ग्रहणीरोग के लाभ प्राप्त करने के लिए विशिष्ट अंतराल पर ध्यान और शोधन (शुद्धिकरण प्रक्रियाएं) को शामिल करें।

ग्रहणी में आसन

1. भुजंगासन (कोबरा पोज)
2. मयूरासन (पीकॉक पोज)
3. पश्चिमोत्तानासन (सीटेड फॉरवर्ड बेंड)
4. मत्स्येन्द्रासन (लॉर्ड ऑफ द फिश पोज)
5. सर्वांगासन (शोल्डर स्टैंड)

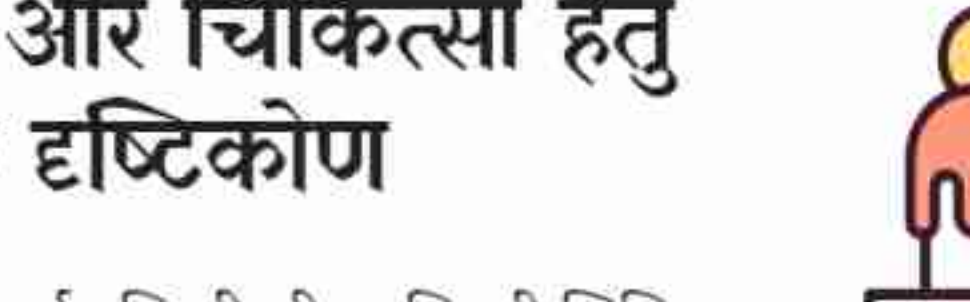

डॉ० दीपांशी नेमा (पीजी छात्रा)
डॉ. संजय कुमार त्रिपाठी (प्रोफेसर) , डॉ. ओ. पी. सिंह (प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष)
कायचिकित्सा विभाग, ऋषिकुल परिसर, राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज,
उत्तराखण उत्तराखण आयुर्वेद विश्वविद्यालय

स्थौल्य

के प्रबंधन और चिकित्सा हेतु आयुर्वेदिक दृष्टिकोण

निदान परिवर्जन किसी भी व्याधि की चिकित्सा की पहली पंक्ति है। स्थौल्य उपचार के तीन मुख्य आधार हैं चिकित्सा-लंघन (उपवास), लंघन-पाचन (औषधि और उपवास), और दोषावशेचन (उन्मूलन)। संतर्पणजन्य व्याधि के रूप में, स्थौल्य की चिकित्सा के लिए शमन और शोधन प्रक्रिया द्वारा अपतर्पण और लंघन उपायों को प्राप्त किया जाता है |

चिकित्सा-

आयुर्वेद ग्रंथों में स्थौल्य के उपचार की विभिन्न विधियों का उल्लेख किया गया है जैसे,

- निदान परिवर्जन
- संशोधन
- संशमन
- पथ्य सेवन

2. संशोधन

बाह्य संशोधन- रुक्ष उद्वर्तन स्थौल्य के लिए संकेतिक बाह्य शोधन में से एक है। इसमें रुक्षण प्रभाव होता है जो इसके कफहर, मेद प्रविलपनम और अंगो में शिलिथता, त्वक्प्रसादकार गुणों के कारण होता है।
अभ्यंतर संशोधन - जिन स्थूल रोगियों में अधिक बल तथा बहु दोष की अवस्था हो उनकी चिकित्सा शोधन चिकित्सा के माध्यम से की जानी चाहिए, जिसके अंतर्गत वमन, विरेचन, रुक्षनिरुह, रक्तमोक्षण, शिरोविरेचन और रुक्ष उष्ण और तीक्ष्ण बस्ति हैं।

3. संशमन चिकित्सा

लंघन और रुक्षण दो ऐसे षड् उपकर्म हैं जिनमें रुक्ष गुण की प्रधानता है और संशमन के लिए इसे स्थौल्य की चिकित्सा में प्रयोग किया जा सकता है। शमन चिकित्सा का कार्यान्वयन "शमन लंघन चिकित्सा" के सामान्य शीर्षक के तहत सात अलग-अलग तरीकों से किया जा सकता है।

- **दीपन**
- **पाचन**
- **क्षुधा निग्रह**
- **तृष्णा निग्रह**
- **व्यायाम**
- **मारुत सेवन**
- **आतप सेवन**

सभी आचार्यो ने स्थौल्य का उल्लेख कृच्छ्रसाध्य व्याधि के रूप में किया है क्योंकि आयुर्वेद में स्थौल्य की चिकित्सा का उद्देश्य अग्नि, वात, कफ और मेद धातु को समयावस्था में लाना है। स्थौल्य में चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य वात, पित्त और कफ विशेषकर समान वायु, पाचक पित्त और क्लेदक कफ के शमन के साथ-साथ मेदोधात्वाग्नि को बढ़ाकर मेदो-धातु का क्षय करना है।

एकल औषधि

- लेखनीय महाकषायः मुस्तक, कुष्ठ, हरिद्रा, वचा, कटुरोहिणी, चित्रक, चिरबिल्व, अतिविषा, दारुहरिद्रा और हैमवती |

- गुग्गुलु, रसोना, शिलाजतु, हरीतकी, गंभारी, विभीतकी, अग्निमंथा, अमलकी, अपामार्गक्षार, गुडुची, गोमूत्र, विडंग, शुंठी, यव आदि

संयुक्त औषधि

- वटी - आरोग्यवर्धिनी वटी, कुटकी वटी।
- गुग्गुलु- नवक गुग्गुलु, कंचनार गुग्गुलु, त्रिफला गुग्गुलु
- चूर्ण - त्रिफला चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण
- क्वाथ/आसव-अरिष्ट- मुस्तादि क्वाथ, अग्निमंथ क्वाथ, बृहत् पंचमूल क्वाथ, लौहारिष्ट
- लौह योग -विडंगादि लौह, त्र्युषनाद्य लौह, वड्वाग्नि लौह।

4. पथ्य सेवन

व्याधि की चिकित्सा के साथ-साथ उचित पथ्य-अपथ्य का अभ्यास करना आयुर्वेदिक विज्ञान की अनूठी विशेषताओं में से एक है।

पथ्य - पुराणशाली, कोद्रव, श्यामक, यव, मुद्ग, चणक, मसूर, आढ़की, शिग्रु, मधु, तक्र, श्रम, जागरण, नित्य। भ्रमण, चिंतन, शोक, क्रोध

अपथ्य- गोधुम, नवीन धान्य, कंद शाक, दुग्ध, दधि, इक्षुविकर, आनूप, औदक, ग्राम्य मांस सेवन, दिवास्वपन, अव्यायम, सुखा शैया, नित्यहर्ष, अचिन्तन, मनसोनिवृत्ति।

डॉ० आकांक्षा बुधोड़ी (पीजी छात्रा)
डॉ. संजय कुमार त्रिपाठी (प्रोफेसर) , डॉ. ओ. पी. सिंह (प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष)
कायचिकित्सा विभाग, ऋषिकुल परिसर, राजकीय आयुर्वेदिक पी० जी० कॉलेज,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

तमक श्वास
की रोकथाम

प्रयोजन चास्य स्वस्थस्य स्वास्थरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनं ॥

आयुर्वेद, प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली जिसका उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाए रखना और विभिन्न प्रकार की बीमारियों से पीड़ित व्यक्तियों को राहत प्रदान करना है। तमक श्वास प्राणवाह स्त्रोत का रोग है।

यह बीमारी श्वास नलियों में सूजन और संकुचन के कारण होती है, जिससे श्वास लेना मुश्किल हो जाता है। तमक श्वास के लक्षणों में खांसी, सांस फूलना, सीने में जकड़न और घरघराहट शामिल हैं। तमक श्वास का कोई पूर्ण इलाज नही है, लेकिन इसके लक्षणों को नियंत्रित किया जा सकता है और इसका प्रकोप रोका जा सकता है। इस लेख में, हम तमक श्वास की रोकथाम के कुछ महत्वपूर्ण उपायों पर चर्चा करेंगे।

1. कारण/ निदान की पहचान और उनसे बचाव

तमक श्वास के रोगियों को सबसे पहले अपने कारण की पहचान करनी चाहिए, जो तमक श्वास के लक्षणों को बढ़ाते हैं जैसे धूल, धुआं, पराग, पालतू जानवरों के बाल, ठंडी हवा, व्यायाम, और तनाव शामिल आदि। कारण की पहचान के बाद, उनसे बचने के उपाय अपनाने चाहिए, जैसे कि मास्क पहनना, घर को स्वच्छ रखना, और धूम्रपान से दूर रहना।

2. स्वस्थ आहार

स्वस्थ आहार का सेवन तमक श्वास की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आहार में साठी चावल, कुलत्थ, गेहूँ, जौ, पुराण घृत, शहद, बथुआ, चौलाई, लहसुन, हरड़, परवल, त्रिकटु, गोमूत्र, गर्म जल, जीवन्ती शाक, बिजौरा, नीबू, एला, सुरसा, आमलकी, पिप्पली, हरिद्रा च्यवनप्राश आदि।

3. व्यायाम और योग

नियमित व्यायाम और योग श्वास की समस्याओं को कम करने में सहायक होते हैं। योग के विभिन्न प्राणायाम और आसन श्वास को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। फेफड़ों की कार्यक्षमता में सुधार होता है। शारीरिक बल का ध्यान रखते हुए व्यायाम करना चाहिए।

4. तनाव प्रबंधन

तनाव भी तमक श्वास के लक्षणों को बढ़ा सकता है। तनाव प्रबंधन के लिए ध्यान, और गहरी सांस लेने की तकनीकें उपयोगी होती हैं। नियमित विश्राम और अच्छी नींद भी तनाव को कम करने में मदद करती है।

5. औषध सेवन

आयुर्वेद में बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के तमक श्वास का प्रभावी ढंग से इलाज करने के लिए कई हर्बल फॉर्मूलेशन का वर्णन किया है।

एकल योग – पिप्पली, कूठ, हरिद्रा, भारंगी, वासा, कृष्ण, मरिच, पुष्करमूल, शटी, एला, सुरसा, घृत भृष्ट हरिद्रा,
आमलकी, आदि।

औषध योग - श्वासकुठार रस, कफकेतु रस, महालक्ष्मी विलास रस, श्वासकासचिन्तामणि रस, मरिच्यादि वटी, व्योषादि वटी, लवंगाादि वटी, हरिद्रा खण्ड, श्रृग्यांदि चूर्ण, तालिशादिचूर्ण आदि।

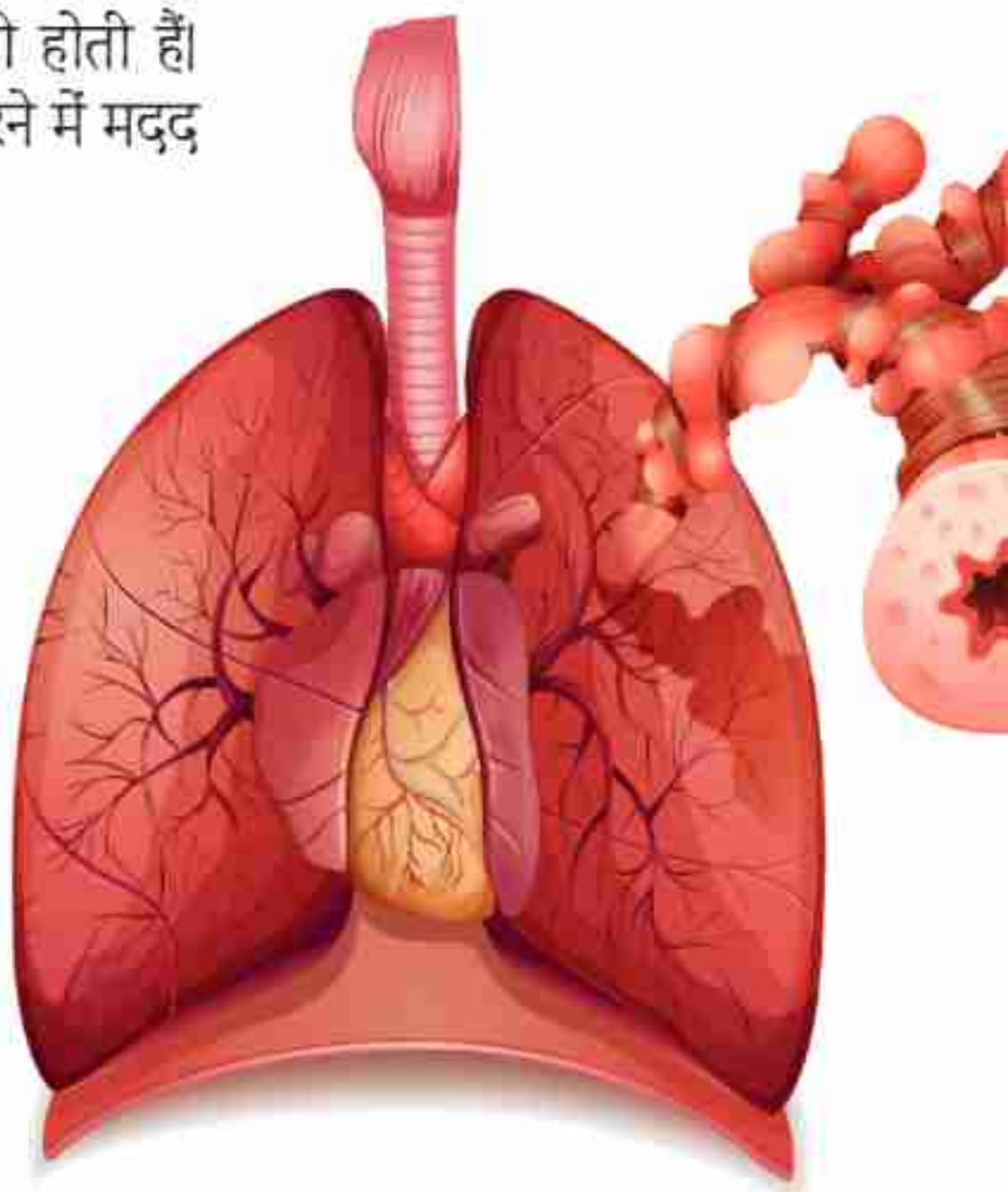

6. नियमित स्वास्थ्य जांच

नियमित रूप से डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए। इससे बीमारी की प्रगति पर नजर रखी जा सकती है और समय पर आवश्यक उपचार किया जा सकता है।

तमक श्वास की रोकथाम के लिए कारण/ निदान की पहचान और उनसे बचाव, नियमित दवाओं का सेवन, व्यायाम और योग, स्वस्थ आहार, तनाव प्रबंधन, और नियमित स्वास्थ्य जांच महत्वपूर्ण हैं। इन उपायों का पालन करके तमक श्वास के लक्षणों को नियंत्रित और जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

डॉ० नेहा (पीजी छात्रा)
डॉ० डी. के. गोयल (विभागाध्यक्ष) गुरुकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

जीवन शैली एवं मानसिक स्वास्थ्य

आज के युग में इस बात के प्रति जागरूकता बढ़ रही है कि प्राथमिक रोकथाम और रोगियों को स्वयं अपने स्वास्थ्य के प्रबंधन को सशक्त बनाने के लिए चिकित्सा को जीवनशैली में बदलावों पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। वास्तव में, जीवनशैली उपचारों की आवश्यकता तेजी से बढ़ रही है, क्योंकि अस्वास्थ्यकर व्यवहार जैसे कि अधिक खाना और व्यायाम की कमी इस हद तक बढ़ रही है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चेतावनी दी है कि "अधिक वजन और मोटापे की बढ़ती वैश्विक महामारी आने वाले समय के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। ये प्रभाव सामान्य रूप से मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेपों और विशेष रूप से टी.एल.सी.(थेरपेटिक लाइफस्टाइल चैंजेस) के सार्वजनिक स्वास्थ्य लाभों के लिए नए साक्ष्य प्रदान करते हैं। तो जीवनशैली में कौन से बदलाव विचारणीय हैं? काफी शोध और नैदानिक साक्ष्य निम्नलिखित आठ टी.एल.सी. का समर्थन करते हैं: व्यायाम, पोषण और आहार, प्रकृति में समय बिताना, रिश्ते, मनोरंजन, विश्राम और तनाव प्रबंधन, धार्मिक और आध्यात्मिक भागीदारी, और दूसरों के लिए योगदान और सेवा।

व्यायाम शारीरिक लाभ प्रदान करता है जो कई शरीर प्रणालियों तक फैला हुआ है। यह कैंसर सहित कई विकारों के जोखिम को कम करता है, और हृदय रोगों से लेकर मधुमेह और प्रोस्टेट कैंसर तक के शारीरिक विकारों के लिए चिकित्सीय है।

हार्वर्ड मेंटल हेल्थ लेटर ("चिकित्सीय प्रभाव," 2000, पृष्ठ 5) ने निष्कर्ष निकाला है, "विभिन्न प्रकार के मानसिक विकारों के लिए व्यायाम एक स्वस्थ, सस्ता और अपर्याप्त रूप से उपयोग किया जाने वाला उपचार है।" शारीरिक प्रभावों की तरह व्यायाम निवारक और चिकित्सीय मनोवैज्ञानिक लाभ दोनों प्रदान करता है।

अध्ययनों से पता चलता है कि व्यायाम अवसाद के जोखिम को कम कर सकता है साथ ही न्यूरोडीजेनेरेटिव विकार जैसे कि उम्र से संबंधित संज्ञानात्मक गिरावट, अल्जाइमर रोग और पार्किंसंस रोग, अवसाद, चिंता, नशे की लत और शरीर के डिस्मॉर्फिक विकार शामिल हैं।

व्यायाम पुराने दर्द, उम्र से संबंधित संज्ञानात्मक गिरावट, अल्जाइमर रोग की गंभीरता और सिजोफ्रेनिया के कुछ लक्षणों को भी कम करता है।

आज तक व्यायाम के संबंध में सबसे अधिक अध्ययन किया गया विकार हल्का से मध्यम अवसाद है। क्रॉस-सेक्शनल, प्रोस्पेक्टिव और मेटा-एनालिटिक अध्ययनों से पता चलता है कि व्यायाम रोगों से बचाव और उपचारात्मक दोनों में प्रभावी है। चिकित्सीय लाभों के संदर्भ में यह फार्माकोथेरेपी और मनोचिकित्सा के समान ही प्रभावी है। एरोबिक व्यायाम और नॉनएरोबिक वेट ट्रेनिंग दोनों ही अल्पकालिक उपचार और दीर्घकालिक रखरखाव दोनों के लिए प्रभावी हैं, और एक खुराक-प्रतिक्रिया संबंध प्रतीत होता है, जिसमें उच्च तीव्रता वाले वर्कआउट अधिक प्रभावी होते हैं। व्यायाम फार्माकोथेरेपी के लिए एक मूल्यवान सहायक है, और प्रसवोत्तर माताओं, बुजुर्गों और बच्चों जैसी विशेष आबादी को इससे लाभ होता है। संभावित मध्यस्थ कारक जो इन अवसादरोधी प्रभावों में योगदान करते हैं, वे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और तंत्रिका क्षेत्रों में फैले हुए हैं। प्रस्तावित शारीरिक मध्यस्थों में सेरोटोनिन चयापचय में परिवर्तन, बेहतर नींद, साथ ही एंडोर्फिन रिलीज और परिणामस्वरूप मानसिक शांति शामिल हैं। व्यायाम मस्तिष्क की मात्रा (ग्रे और सफेद पदार्थ दोनों), वास्कुलराइजेशन, रक्त प्रवाह और कार्यात्मक माप को बढ़ाता है। जानवरों पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि हिप्पोकैम्पस में व्यायाम से प्रेरित परिवर्तनों में न्यूरोनोजेनेसिस, सिनैप्टोजेनेसिस, न्यूरोनल संरक्षण, इंटरन्यूरोनल कनेक्शन और ठक्छथ्(मस्तिष्क-व्युत्पन्न न्यूरोट्रॉफिक कारक, वही न्यूरोट्रॉफिक कारक जिसे एंटीडिप्रेसेंट अपग्रेड करते हैं) शामिल हैं।

इन तंत्रिका प्रभावों को देखते हुए, यह आश्चर्य की बात नही है कि व्यायाम भी महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक लाभ प्रदान कर सकता है। इसमें युवाओं में शैक्षणिक प्रदर्शन को बढ़ाने से लेकर, स्ट्रोक रिकवरी में सहायता करने, उम्र से संबंधित स्मृति हानि को कम करने और बुजुर्गों में अल्जाइमर और गैर-अल्जाइमर दोनों प्रकार के मनोभ्रंश के जोखिम को कम करने तक शामिल हैं। कई अध्ययनों से पता चलता है कि व्यायाम अल्जाइमर रोगियों के लिए एक मूल्यवान चिकित्सा है जो बौद्धिक क्षमताओं, सामाजिक कार्यों और संज्ञानात्मक कौशल में सुधार कर सकता है।

पोषण और आहार -

मानसिक स्वास्थ्य के लिए पोषण के महत्व के बारे में अब पर्याप्त सबूत हैं, और 160 से अधिक अध्ययनों की विस्तृत समीक्षा से पता चलता है कि आहार संबंधी कारक इतने महत्वपूर्ण हैं कि राष्ट्रों का मानसिक स्वास्थ्य उनसे जुड़ा हो सकता है। इस विषय पर बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध होने के कारण, अभिभूत होना आसान है। दो प्रमुख आहार घटकों पर विचार किया जाना चाहिएः भोजन का चयन और पूरक (सप्लीमेंट्स)। भोजन के चयन के लिए, टीएलसी के लिए मुख्य सिद्धांत ऐसे आहार पर जोर देना है जो मुख्य रूप से बहुरंगी फलों और सब्जियों से युक्त (एक "इंद्रधनुष आहार")। इसमें कुछ मछलियाँ शामिल हैं जिनमें लाभकारी ओमेगा-3 मछली के तेल की मात्रा अधिक होती है।

अत्यधिक कैलोरी लेना कम करना बहुत उपयोगी है। महामारी का सामना कर रहे समाजों के लिए, अतिरिक्त कैलोरी कम करने
से आर्थिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य दोनों लाभ मिलते हैं। व्यक्तियों के लिए, अतिरिक्त कैलोरी कम करने से चिकित्सा और तंत्रिका संबंधी लाभ मिलते हैं।

यह न्यूरोप्रोटेक्शन हाल ही में हुए निष्कर्षों के मद्देनजर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जो यह सुझाव देते हैं कि वयस्क मोटापा संज्ञानात्मक कार्य में कमी के साथ-साथ श्वेत और धूसर पदार्थ के मस्तिष्क की मात्रा में कमी से जुड़ा हो सकता है। सौभाग्य से, शाकाहारी आहार में कैलोरी कम होती है। कई मानव और पशु अध्ययनों से पता चलता है कि शाकाहारी आहार जीवन काल में मनोविकृति को रोक सकते हैं या सुधार सकते हैं। ऐसे आहार बच्चों में संज्ञानात्मक शैक्षणिक प्रदर्शन को बढ़ा सकते हैं और साथ ही वयस्कों में सिजोफ्रेनिक विकारों को सुधार सकते हैं। वे न्यूरोप्रोटेक्टिव लाभ भी देते हैं, जैसा कि उम्र से संबंधित संज्ञानात्मक गिरावट, और पार्किंसंस रोग की घटनाओं में कमी से प्रदर्शित होता है।

वैज्ञानिक शोध प्रमाण बताते हैं कि खाद्य पूरक मानसिक स्वास्थ्य के लिए मूल्यवान रोगनिरोधी और चिकित्सीय लाभ प्रदान करते हैं। शोध विशेष रूप से विटामिन डी, फोलिक एसिड,।डम् (एस-एडेनोसिल-मेथियोनीन) और सबसे अधिक मछली के तेल पर केंद्रित है। मछली और मछली का तेल मानसिक स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

वे आवश्यक ओमेगा-3 फैटी एसिड, विशेष रूप से म्च्। (ईकोसार्पेंटेनोइक एसिड) और क्भ्। (डोकोसा-हेक्सानोइक एसिड) की आपूर्ति करते हैं, जो तंत्रिका कार्य के लिए आवश्यक हैं। प्रणालीगत रूप से, ओमेगा-3 सूजनरोधी होते हैं, ओमेगा-6 फैटी एसिड के सूजनरोधी प्रभावों का प्रतिकार करते हैं, और कई शरीर प्रणालियों की सुरक्षा करते हैं।

एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण खोज यह है कि मछली के तेल उच्च जोखिम वाले युवाओं में पहले एपिसोड साइकोसिस की प्रगति को रोक सकते हैं। 13 से 25 वर्ष की आयु के 81 युवाओं पर एक यादृच्छिक, डबल-ब्लाइंड, प्लेसबो-नियंत्रित अध्ययन किया गया, जिनमें सबथ्रेशोल्ड साइकोसिस था। 12 सप्ताह तक प्रतिदिन एक बार 12 ग्राम ओमेगा-3 के साथ मछली के तेल का सेवन करने से सकारात्मक और नकारात्मक दोनों लक्षण कम हो गए, साथ ही पूर्ण साइकोसिस की ओर बढ़ने का जोखिम भी कम हो गया। विशेष रूप से महत्वपूर्ण यह निष्कर्ष था कि उपचार बंद होने के बाद नौ महीने तक अनुवर्ती कार्रवाई के दौरान लाभ बना रहा। विटामिन डी एक बहुउद्देश्यीय हार्मोन है जिसमें न्यूरोट्रॉफिक, एंटीऑक्सीडेंट और एंटी-इंफ्लेमेटरी प्रभाव सहित कई तंत्रिका कार्य होते हैं। विटामिन डी की कमी पूरी आबादी में व्यापक है, खासकर बुजुर्गों में, और इससे काफी चिकित्सा संबंधी नुकसान होता है, कई अध्ययनों से पता चलता है कि इसका संज्ञानात्मक हानि, अवसाद, द्विध्रुवी विकार और सिजोफ्रेनिया से संबंध है इसलिए मानसिक स्वास्थ्य पेशेवर नियमित पूरक (आमतौर पर प्रति दिन 600 यूनिट) की सिफारिश करने में चिकित्सकों के साथ जुड़ने लगे हैं और, जहां संकेत दिया जाता है, रोगियों के विटामिन डी के रक्त स्तर की जांच करते हैं और उसके अनुसार पूरक स्तर को संशोधित करते हैं।

पूरक और शाकाहारी आहार के और भी लाभ हैं। सबसे पहले, उनके कई सामान्य स्वास्थ्य लाभ हैं और कम दुष्प्रभाव हैं। दूसरा, वे कुछ सहवर्ती विकारों जैसे मोटापा, मधुमेह और हृदय संबंधी जटिलताओं को कम कर सकते हैं जो कुछ मानसिक बीमारियों और दवाओं के साथ हो सकते हैं। मस्तिष्क के लिए अच्छा आहार शरीर के लिए भी अच्छा होता है। इस प्रकार, आहार मूल्यांकन और सिफारिशें मानसिक स्वास्थ्य देखभाल के उचित और महत्वपूर्ण तत्व हैं।

प्रकृति में समय बिताना

प्रकृति एक ऐसी चिकित्सा की कल्पना है जिसका कोई ज्ञात दुष्प्रभाव नही है, आसानी से उपलब्ध है और जो शून्य लागत पर आपके संज्ञानात्मक कार्य को बेहतर बना सकती है। ऐसी चिकित्सा दार्शनिकों, लेखकों और आम लोगों को प्रकृति के साथ बातचीत करते हुए समान रूप से ज्ञात है। कई लोगों ने संदेह किया है कि प्रकृति बेहतर संज्ञानात्मक कार्य और समग्र कल्याण को बढ़ावा दे सकती है, और इन प्रभावों को हाल ही में प्रलेखित किया गया है। हजारों वर्षों से, बुद्धिमान लोगों ने प्रकृति को उपचार और ज्ञान के स्रोत के रूप में सुझाया है। योगी जंगल में प्रवेश करते हैं, प्रकृति के दर्शन की खोज पर जाते हैं। उनका अनुभव है कि प्रकृति अच्छा अनुभव कराती है और मन को शांत करती है, मानसिक तुच्छता को दूर करती है।

प्रकृति मौन का उपहार भी देती है आधुनिक शहरों में कर्कश ध्वनियाँ और ध्वनि प्रदूषण प्रचूर मात्रा में है। दुर्भाग्य से, शहरी शोर महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मनोदैहिक नुकसान पहुंचा सकता है। उदाहरण के लिए, ये केवल झुंझलाहट से लेकर वयस्कों में ध्यान संबंधी कठिनाइयों, नींद की गड़बड़ी और हृदय संबंधी रोग और बच्चों में बिगड़ा हुआ भाषा अधिग्रहण तक होते हैं।

अच्छे रिश्ते

जीवन भर खुशियाँ सुनिश्चित करने के लिए बुद्धि द्वारा प्राप्त किए जाने वाले सभी साधनों में से, अब तक सबसे महत्वपूर्ण है दोस्तों का निर्माण। यह विचार कि अच्छे रिश्ते शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं, एक प्राचीन विषय है, जिसे अब काफी शोध द्वारा समर्थित किया गया है।

अच्छे रिश्ते सामान्य सर्दी से लेकर स्ट्रोक, मृत्यु दर और कई मनोविकृति तक के स्वास्थ्य जोखिमों को कम करते हैं। सकारात्मक पक्ष पर, अच्छे रिश्ते बढ़ी हुई खुशी, जीवन की गुणवत्ता, लचीलापन, संज्ञानात्मक क्षमता और शायद बुद्धि से भी जुड़े हैं। जीवन के विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण से पता चलता है कि जीवन की गुणवत्ता "अंतरंगता के क्षेत्र पर हावी है" और यह कि प्रत्यक्ष मनोविकृति वाले लोगों में जीवन की गुणवत्ता "विशेष रूप से अंतरंगता के क्षेत्र में" कम होती है। इन नैदानिक टिप्पणियों को अब सामाजिक तंत्रिका विज्ञान के उभरते क्षेत्र में आधारित किया जा सकता है, जो सुझाव देता है कि हम अन्योन्याश्रित प्राणी हैं, जो सहानुभूति और रिश्ते के लिए हैं। पारस्परिक संबंध इतने शक्तिशाली हैं कि जोड़े मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से एक-दूसरे को ढाल सकते हैं।

जीवन शैली में सुधार लाने से बहुत सी बीमारियों से बचा जा सकता है एवं कई बीमारियों के उपचार में यह सहायक है। जीवन शैली के प्रमुख घटकों जैसे व्यायाम, भोजन, प्रकृति में समय बिताना, निद्रा सामाजिक भागीदारी, सेवा आदि को सही रूप में अपनाने से आयु में वृद्धि होती है एवं स्वास्थ्य में सुधार होता है। आज के युग में मानसिक शांति की बहुत कमी होती जा रही है और सामाजिक एवं पारिवारिक रिश्तों में कमी आती जा रही है इस कारण मानसिक रोग बढ़ रहे हैं।

अतः मानसिक रोगों से बचाव का उपाय पुनः पारंपरिक जीवन शैली को अपनाना एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रधानता देना ही है। व्यक्तिगत चिकित्सकीय जीवनशैली परिवर्तन ज्स्ब्(थेरपेटिक लाइफस्टाइल चैंजेस) समकालीन रोगजनक जीवनशैली की कई चिकित्सीय और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं का मुकाबला करते दिखाई देते हैं। इससे एक उम्मीद की किरण जगती है: क्या कई ज्स्ब् और भी अधिक प्रभावी हो सकते हैं? जानवरों पर किए गए अध्ययनों और नैदानिक चिकित्सा दोनों में इस संभावना के सबूत मौजूद हैं।

डॉ० उत्तम कुमार शर्मा, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
डॉ० आशा थपलियाल ,पी.जी.स्कॉलर, पंचकर्म विभाग,
गुरुकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

नेत्र विकारों में तर्पण की भूमिका

तर्पण एक चिकित्सीय नेत्र उपचार है जो अपने पौष्टिक गुणों के लिए जाना जाता है, इसे नेत्र बस्ती या अक्षतर्पण भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया में, औषधीय घृत को आँखों पर एक विशेष फ्रेम का उपयोग करके डाला जाता है ताकि इसे स्थान पर रखा जा सके। यह उपचार स्वस्थ व्यक्तियों को उम्र से संबंधित दृष्टि संबंधी समस्याओं और मैकुलर डिजनरेशन, कंप्यूटर स्ट्रेन और जैसी आँखों की स्थितियों को रोककर लाभ पहुँचाता है। इसे वात को संतुलित करने और विभिन्न दृष्टि संबंधी समस्याओं में सुधार के लिए प्रभावी माना जाता है।

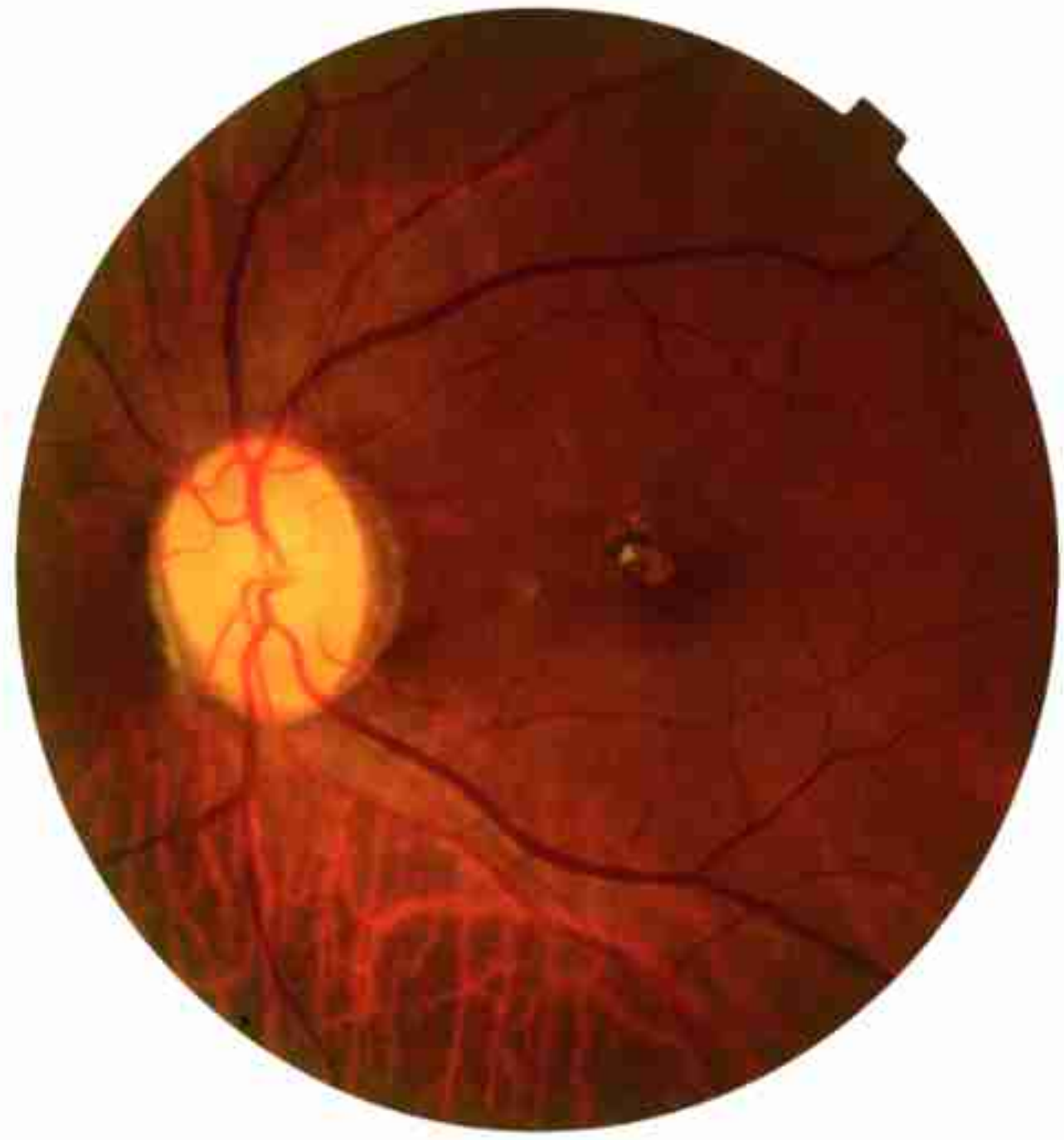

तर्पण उपयोगी रोग

- तिमिरा
- तमः प्रवेश
- नेत्र-स्तब्धता
- नेत्र-शुष्कता
- शीर्णपक्ष्मा
- आविल नेत्र
- क्रिच्छौन्मीलन(आँखें खोलने बंद करने मे परेशानी)
- सिराहर्षा
- सिरोत्पता- सिलिअरी कंजेशन
- अर्जुन- सबकंजंक्टिवल हैमरेज
- शुक्र
- अभिष्यंद- कंजंक्टिवाइटिस
- अधिमंथ - ग्लूकोमा
- अन्यतोवत
- वातपर्याय
- अक्षि-शोथ
- आंखों के वात और पैत्तिक रोग
- अभिघात

तर्पण का प्रयोग वर्जित ➤ आँखों की बैक्टीरियल इन्फेक्शन, वायरल इंफ़ेक्शन, आँखों मैं चिपचिपापन, कोर्निया के ज़ख्म आदि मे

पूर्व कर्म- रोगी को हवा और सीधी धूप से सुरक्षित, स्वच्छ, धूल रहित कमरे में पीठ के बल लेटने की सलाह दी जाती है। इसके बाद, गुनगुने पानी में भिगोई हुई रूई से हल्का सेंक किया जाता है। इसके बाद, रोगी की आँखों के चारों ओर माष दाल के चूर्ण से बना एक ठोस, सघन अवरोध बनाया जाता है।

प्रधानकर्म- रोगी को अपनी आँखें बंद करने का निर्देश दिया जाता है, जिसके बाद गुनगुना तरल घृत को धीरे-धीरे बंद पलकों पर डाला जाता है जब तक कि यह सभी पलकों को ढक न ले। फिर रोगी को समय-समय पर अपनी आँखें खोलने और बंद करने के लिए कहा जाता है। निर्दिष्ट समय बीत जाने के बाद, तरल को आँख के बाहरी कोने के पास एक छोटे से छिद्र के माध्यम से बाहर निकाल दिया जाता है। अंत में, गुनगुने पानी का उपयोग धीरे-धीरे आँख को सेंकने के लिए किया जाता है।

पाश्चात्कर्म- मुख्य अक्षतर्पण प्रक्रिया समाप्त होने के बाद, रोगी को धूमपान के संपर्क में लाया जाता है, जिसमें औषधीय धुआँ शामिल होता है।

तर्पण कैसे काम करता है?

आधुनिक नेत्र चिकित्सा में मेडिसिन देने के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग किया जाता है, जिसमें आई ड्रॉप, ऑइंटमेंट जैल और ऑक्यूसेर्ट शामिल हैं। आई ड्रॉप सुविधाजनक हैं लेकिन तेजी से पतला होने और जल निकासी के कारण इनका संपर्क समय कम हो सकता है। सस्पेंशन, जिसमें जलीय माध्यम में दवा के कण होते हैं, घोल की तुलना में आँख में अधिक समय तक रहते हैं, जिससे ऊतक संपर्क समय में सुधार होता है।

कॉर्निया में लिपिड-पारगम्य एपीथेलियम और एंडोथेलियम और स्ट्रोमा दोनों परतें होती हैं, जो दवा वितरण को प्रभावित करती हैं। तर्पण, जिसमें घृत और औषधीय काढ़े के संयोजन का उपयोग किया जाता है, अपनी लिपिड प्रकृति के कारण कॉर्निया की परतों को प्रभावी ढंग से पार करता है, जिससे संपर्क समय में वृद्धि होती है और अवशोषण में सुधार होता है। यह विधि अवशोषण को बढ़ाकर और कॉर्निया पर सीधा दबाव डालकर उच्च चिकित्सीय सांद्रता और अधिक प्रभावी दवा क्रिया सुनिश्चित करती है।

निष्कर्ष

आँखें एक अनमोल उपहार हैं, जो दुनिया को पूरी तरह से अनुभव करने के लिए आवश्यक हैं। नेत्र विज्ञान में आधुनिक प्रगति के साथ भी, सीमाएँ बनी हुई हैं। आयुर्वेद उपचार और स्वास्थ्य दोनों के लिए मूल्यवान मार्गदर्शन प्रदान करता है। नेत्र तर्पण, एक स्थानीय चिकित्सीय प्रक्रिया है, जिसने दृष्टि को संरक्षित करने और सुधारने में महत्वपूर्ण प्रभावशीलता का प्रदर्शन किया है।

डॉ० अदिति (असिस्टेंट प्रोफेसर)
डॉ० पारुल रावत (पी.जी.स्कॉलर), शलाक्य तंत्र विभाग,
गुरुकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

दूषी विष की विषाक्तता

दूषी और विष जैसे दो अलग-अलग शब्दों को मिलाने से दूषी विष शब्द बनता है। दूषी का अर्थ है दूषित, सुप्त, विकृत, और दुर्बल तत्व। यह धातुओं को दूषित करते हुए विभिन्न प्रकार की बिमारियाँ उत्पन्न करता है विष का अर्थ होता है जहर। शरीर इस प्रकार के विकृत और दुर्बल विष का उपयोग सुप्त विषाक्त तत्वों के रूप में करता है। आयुर्वेद के अनुसार, विष को कई श्रेणियों में बांटा गया है, जिसमें स्थावर-जंगम और गर-दूषी विष शामिल हैं। दूषी विष एक धीमा जहर है जो हमारे शरीर में धीरे-धीरे जमा होता है और आगे चल के कई बीमारियाँ उत्पन्न करता है, क्योंकि यह अल्प वीर्य होने के कारण मनुष्य को शीघ्र हानि नही पहुँचाता है।

आधुनिक समय के संदर्भ में दूषी विष के विचार को सरल बनाने के लिए हम इसे मनुष्यों पर आर्सेनिक, सीसे, पारा, तांबे आदि जैसे विषाक्त पदार्थों के दीर्घकालिक व्यावसायिक संपर्क के प्रभावों के समानांतर रख सकते हैं। इन उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों को विषाक्त पदार्थों के संपर्क में दशकों तक रहना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में विष का धीरे-धीरे संचय होता है और कालान्तर में रोगो को उत्पन्न करता हैं।

कृषिक्षेत्र में काम करने वाले श्रमिक भी पराक्काट, ओसीपी, ओपीपी, और क्लोरोफेनॉक्सी एसीटेट जैसे रसायनो (जहरों) के लंबे समय तक संपर्क में रहते हैं, जिनका उपयोग फसलों को संक्रमित होने से बचाने के लिए खरपतवार नाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के लंबे समय तक संपर्क से भी स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव होते हैं। इन प्रकार के हानिकारक उपयोग को वर्तमान में दूषी विष के विचार से जोड़ा जा रहा है। नये रोग की तुलना में रुढ़ बीमारियाँ अधिक चिंताजनक होती हैं। नये संक्रमण के स्पष्ट लक्षण होते हैं, जिससे निदान और उपचार सरल हो जाता है। दूसरी ओर, पुरानी बीमारियों के लक्षण अस्पष्ट होते हैं, जिन्हें पहचानना चुनौतीपूर्ण होता है। अपनी अस्पष्टता के कारण, औद्योगिक पुरानी विषाक्तता के लक्षणों को अन्य प्रणालीगत बीमारियों के रूप में गलत समझा जा सकता है। इसके अलावा, गलत निदान स्वास्थ्य के लिए खतरा बन सकता है। इसलिए, पुरानी संचयी विषाक्तता और इसके हानिकारक प्रभावों का ज्ञान होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस निरंतर विषाक्तता और दूषी विष की अवधारणा के बीच एक संबंध हो सकता है।

इस प्रकार की विषाक्तता विकसित होने की अधिक संभावना उन लोगों को हो सकती है जो कि औद्योगिक श्रमिक और रासायनिक उद्योग में काम करते हो। अतः उनके लिए नियमित विषहरण प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना चाहिए। सामान्य जनता को विरुद्ध आहार, अपथ्य आहार-विहार आदि के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। शरीर से विषाक्त पदार्थों को निकालने के लिए नियमित शुद्धिकरण प्रक्रियाओं का पालन करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने दूषी विष के उपचारात्मक सिद्धांत के अनुसार, दोष की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए स्वेदन कर्म का वर्णन किया है, जिसके बाद शोधन कर्म जैसे कि वमन और विरेचन कर्म का पालन किया जाता है। शोधन कर्म के बाद प्रतिदिन दूषीविषारी अगद पान करना चाहिए। विषहरण औषधियो में पिप्पली, सुवर्चिका, मोथा, सूक्ष्मेला, जटामांसी,शावर,लोध्र आदि शामिल हैं जो कि दूषी विष के प्रभाव को कम करने में सहायक है।

डॉ० देवराज सिंह पाँवर,
डॉ० अंकिता नौटियाल
(पी.जी.स्कॉलर),
ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

अम्लपित्त:

वर्तमान युग में नैदानिक मूल्यांकन

आयुर्वेद सबसे पुरानी चिकित्सा पद्धति है, जिसका जन्म भारत में वर्षो पहले हुआ था। वर्तमान युग में ओर पुरातन युग में रोगों के स्वरूप में बदलाव आया है। यह रोगों के स्वरूप में बदलाव लोगों के आहार, विहार व जीवन शैली में बदलाव के कारण ही हुआ है। वर्तमान समय की अत्याधुनिक जीवनचर्या में लोगों ने खुद को इतना व्यस्त कर लिया हैं के लोग अनुचित आहार, विहार व जीवनशैलि का अभ्यास करने लगे हैं, जिसके फल स्वरूप धीरे-धीरे अनेक पाचन संबधित व अन्य रोगों से ग्रसित होने लगे हैं। अम्लपित्त, भी उन्ही रोगों में से एक है। जिससे ग्रहण किए गए भोजन का उचित पाचन नही हो पता है। आयुर्वेद में किसी रोग की उत्पत्ति उसको उत्पन्न करने वाले कारण (निदानों) के सेवन से होती है। जिससे दोषों (वात पित्त कफ) का प्रकुपित होने का वर्णन मिलता है, इसी परिपेक्ष में अनेक आचार्यो ने अम्लपित्त का विभिन्न रुपों में वर्णन किया है तथा पित्त दोष का मुख्य रूप से प्रकुपित होना माना है।

निदान (उत्पादक कारण) अम्लपित्त रोग को उत्पन्न करने में विभिन्न अहराज, विहाराज, मानसिक एव आगंतुज कारण सम्मिलित हैं। जिनका वर्णन निम्न प्रकार है-

1. आहारज कारण

- **विरुद्ध आहार** इसमें विभिन्न रस, गुण, कर्म आदि के विपरीत दो प्रकार के भोजन पदार्थो को अपनी सहजता के अनुसार एक साथ ग्रहण करना जो की आज के परिक्षेप में निम्न हैं-
  - ✓ फलों को भोजन के साथ ग्रहण करना।
  - ✓ दूध ओर फलों को साथ लेना, जैसे कस्टर्ड, सेक आदि खट्टे पदार्थ तथा डेरी उत्पाद, चाय।
- **दुष्ट अन्न**- दुष्ट अन्न के अंतर्गत बासी तथा दूषित भोजन आते हैं।
- **विदही अन्न** - विदही से तात्पर्य है, जो अन्न शरीर मे दाह उत्पन्न करे।
  - ✓ मिर्च, मसालेदार भोजन, चाइनीज भोजन (चाउमीन आदि), अन्य फास्ट फूड
- **अम्ल अन्न** - अत्यधिक अम्लीय भोजन जैसे आचार का नित्य सेवन, सिरका का अत्यधिक प्रयोग, कढ़ी, दही खड़े पदार्थ का अत्यधिक सेवन
- **लवण अन्न** - नमक का भोजन में अधिक सेवन, नमकीन पापड़ आदि का नित्य सेवन
- **स्निग्ध अन्न** अत्यधिक तैलीये पदार्थो का सेवन जैसे - - पूरी, भटूरे पकोड़े फ्रेंच फ्राइस समोसे पिज्जा, चिप्स।

2. विहारज कारण- आहार के साथ- साथ दिनचर्या का विषम होना भी रोगों का कारण होता है, जो निम्न हैं-

- वेगों को रोकना (शारीरिक व मानसिक वेग), दिन में भोजन के बाद सोना, अनिश्चित निंद्रा।

3. मानसिक कारण - आज के भाग दौड़ भरे समय में भोजन व दिनचर्या के साथ साथ लोगों का मानसिक तनाव भी बढ़ता जा रहा है, जिससे पाचन संबंधित अम्लपित्त जैसे अनेक रोग हो रहे हैं जैसे- क्रोध (गुस्सा अधिक आना), चिंता (अत्यधिक सोचना), शोक (उदास रहना), भय (डर), मोह (किसी भी चीज से अधिक लगाव)

4. आगंतुज कारण - ये कारण निम्न प्रकार हैं- अत्यधिक कोल्ड ड्रिंक, कॉफी आदि का प्रयोग, बिना चिकित्सक के परामर्श औषधि का प्रयोग, धूम्रपान का प्रयोग, मदिरा पान।

अम्लपित्त के सामान्य लक्षण -

- अविपाक (भोजन का पाचन न होना)
- क्लम (बिना काम किए शरीर मे थकावट होना)
- उत्क्लेश (उल्टी करने की इच्छा होना)
- तिक्त अम्लोद्गार (खट्टी डकार आना)
- हृदकंठदहा (हृदय प्रदेश व कण्ठ मे जलन होना)

अम्लपित्त रोग की उत्पत्ति में निदान की मुख्य भूमिका हैं। यदि निदान सेवन न किया जाए ओर पथ्य आहार का सेवन किया जाए तो अम्लपित्त रोग शांत किया जा सकता है। आयुर्वेद में निदान परिवर्जन का वर्णन मिलता हैं-

"सङ्क्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम ।।"
अर्थात जिन कारणों से अम्लपित्त रोग उत्पन्न हो रहा है उनका त्याग करना ही रोग की चिकित्सा है।

आयुर्वेद में पथ्य आहार की भी विशेष भूमिका है, पथ्य आहार के सेवन से भी रोग की उत्पत्ति को रोका जा सकता है।
"पथ्य सतत गदातयस्थ किमौषधतनषेवणः ।।"
अर्थात पथ्य आहार के निरंतर प्रयोग से किसी रोग की उत्पत्ति नही होती है पथ्य आहार से बढ़कर कोई औषधि नही है।
अम्ल पित्त के लिए निम्न पथ्य आहार हैं पुराने चावल, यव, गेहूं, मूंग दाल, कुष्मांड, आंवल, गाय का घी, नारियल पानी, पुराना शहद, शर्करा आदि

डॉ० पूजा राणा, डॉ० तनया चड्ढा (पी.जी.स्कॉलर)
डॉ० रूबी रानी अग्रवाल (प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

युवान पीड़िका

एक समीक्षा

चेहरे की त्वचा किसी व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति को दर्शा सकती है। युवान पीडिका चेहरे की त्वचा को प्रभावित करने बाले विकारों में से एक है। युवान पीड़िका एक विशेष आयु वर्ग यानी किशोरों को प्रभावित करने वाली बीमारी है. लेकिन यह किसी भी उम्र में हो सकती है। शारीरिक धाथों के अलावा, युवान पीड़िका रोगियों की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्थिति पर भी गहरा प्रभाव डाल सकता है।

सर्वप्रथम आचार्य सुश्रुत ने क्षुद्र रोग विषय के अंतर्गत इस रोग का उल्लेख किया था जिसे मुखदूषिका के नाम से भी जाना जाता है। इसका वर्णन शाल्मली कंटक जैसे दिखने वाले विशिष्ट लक्षण के रूप में किया गया है और यह बात कफ और रक्त की दुष्टि के कारण होता है।
आचार्य वाग्भट्ट ने युवान पिडिका की विकृति में मेद की भूमिका का भी उल्लेख किया है जो सीबम के आधुनिक सिद्धांत के समान है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित इस रोग की विशेषताओं के आधार पर इसे एक्ने वल्गेरिस से सहसंबद्ध किया जा सकता है। मुँहासे सबसे अधिक देखे जाने वाले त्वचा संबंधी विकारों में से एक है।

यह पाइलोसेबेसियस इकाइयों को प्रभावित करने वाली बीमारी है। मुँहासे पैदा करने वाले कुछ मुख्य कारक है- तनार, एण्ड्रोजन का प्रभाव आयु समूह, जाति, आहार संबंधी कारक, रासायनिक उत्पादों और सौंदर्य प्रसाधनों का बहुत अधिक उपयोग।

निदान

आयुर्वेदिक ग्रंथों में युवान पिडिका के निदान की पूरी ब्याख्या नही की गई है और बहुत ही संक्षिप्त विवरण उपलब्ध है। रोग के लिए विशिष्ट कारकों का उल्लेख नही किया गया है केवल कफ वात और रक्त को विकृति विज्ञान में शामिल माना जाता है। आचार्य चरक ने पिडिका के कारकों में रक्त के साथ पित्त की दुष्टि होने का भी उल्लेख किया है। मेद को युवान पिडिका का निदान भी माना जा सकता है क्योंकि मेदागर्भता रोग के लक्षणों में से एक है।

इस प्रकार हम वात पित्त कफ रस रक्त मेद धातु की दुष्टि को रोग की विकृति में शामिल मान सकते है। आधुनिक सिद्धांत के अनुसार मुंहासे आमतौर पर एंड्रोजन हार्मोन लेवल में वृद्धि के परिणामसवरूप होते हैं। यह हार्मोन तेल ग्रंथियों के आकार को बढ़ाता है, जिससे तेल का उत्यादन भी बढ़ जाता है।

पूर्वरूप- आयुर्वेदिक ग्रंथों में युवान पिडिका के पूर्वरूप की व्याख्या नही की गई है परन्तु त्वक रोग होने के कारण शोथ, कण्डु, तोदवत वेदना, वैवर्णय को युवान पिडिका का पूर्वरूप मान सकते हैं।

लक्षण- विभिन्न आचार्यो द्वारा युवान पीड़िका के लक्षण इस प्रकार बताये गए हैं

1. यह पीड़िका आकार में शाल्मली कंटक के समान होती है।
2. यह पीड़िका चुभने वाली वेदना समान होती है।
3. यह पीड़िका मुख्यता किशोर अवस्था में होती है।
4. पीड़िका घन और मेद से भरी होती है और साथ ही शोथ दाह पाक स्राव इन लक्षणों युक्त होती है।

युवान पिडिका के प्रकार

- ब्लैकहेड्स
- व्हीटहाड्स
- छोटे लाल, कोमल पिंपल्स
- मवाद से भरे पिंपल्स
- त्वचा के नीचे बड़ी, ठोस, दर्दनाक गांठ
- त्वचा के नीचे दर्दनाक, मवाद से भरी गांठ
- मुंहासे आमतौर पर चेहरे, माथे, छाती, ऊपरी पीठ और कंधों पर दिखाई देते हैं।

चिकित्सा

चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम निदानो का त्याग करना जरूरी है जैसे अहारिक निदान, तनाव, आधुनिक जीवनशैली, कॉस्मेटिक पदार्थो का अत्यधिक उपयो। इन निदानो का आजकल हमारे जीवन में अत्यधिक उपयोग होने के कारण विभिन्न त्वक सम्बन्धी रोग उत्यन्न होते है इसलिए सर्वप्रथम निदान परिवर्जन चिकित्सा का प्रथम सिद्धांत है। इसी के साथ रोग अनुसार औषध का प्रयोग एवं पथ्य अपथ्य आहार की सही जानकारी होना अतिआवश्यक है।

डॉ० तनया चड्ढा , डॉ० पूजा राणा (पी.जी.स्कॉलर)
डॉ० संजय कुमार सिंह (प्रोफेसर)
रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

21वी सदी की परिभाषित व्याधि

मधुमेह एवं आयुर्वेद

मधुमेह इस सदी की एक परिभाषित व्याधि है। मधुमेह एक दीर्घकालीन गैर संचारी व्याधि है, जिसके परिणमस्वरूप रक्त में शर्करा के स्तर की वृद्धि होती है। 21वी सदी में बदलती जीवनशैली मधुमेह का प्रमुख कारण है। आईसीएमआर-इंडियाब के एक अध्ययन अनुसार मधुमेह की व्यापक्ता दर 11.7% है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार अगले दो दशको में स्वास्थ्य समुदाय मधुमेह से कैसे निपटता है, यह अगले 80 वर्ष के लिए जनसंख्या स्वास्थ्य एवं जीवन को आकार करेगा। आयुर्वेद के अनुसार मधुमेह एक त्रिदोष कफ प्रधान व्याधि है। यह मुख्यतः अनुवांशिक या अपथ्य आहार-विहार सेवन के फलस्वरूप होती है।

इसके निदान निम्लिखित है -

- कफकारक आहार विहार
- नव अन्न पान सेवन
- अति दिवास्वपन
- अति चिंता

मधुमेह का वर्गीकरण निम्न है-

- टाइप 1 मधुमेह (डी एम1) - इंसुलिन पर निर्भर होता है
- टाइप 2 मधुमेह (डी एम2) - गैर इंसुलिन पर निर्भर होता हैं
- गर्भकालीन मधुमेह-गर्भ अवस्था के दौरान उत्पन्न

यह एक चयापचय विकार है, जिसके फलस्वरूप इंसुलिन (हारमोन) उत्पादन में कमी या शिथिलता आती है। उचित चिकित्सा के लिए, निदान एक महत्तवपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही निदान का प्रयोग रोग की गंभीरता का आकालन करने के लिए भी किया जाता है।

आयुर्वेद, अथर्वेद का उपवेद है जो दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त जैसे व्यवस्था के लिए जाना जाता है। मधुमेह को प्रमेह के 20 प्रकारो के अंतरगत, वातज प्रमेह में वर्णित किया गया है।

इसके प्रमुख लक्षण निम्लिखित है-

- क्लम

- बहुमूत्रता
- अतिपिपासा
- अतिक्षुधा
- हस्त-पाद में दाह की अनुभूति
- असहज अनुभूति
- बिना कारण वजन में क्षय

आयुर्वेद के अनुसार, मधुमेह एक याप्य व्याधि है। परन्तु आयुर्वेद मधुमेह को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में सक्षम है।

आयुर्वेद इसकी चिकित्सा हेतु निदान परिवर्जन एवं स्वस्थ जीवनशैली (दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त आदि) का पालन करने पर महत्तव देता है।

इसके साथ आयुर्वेद में जीवनीय एवं रसायन गब्यो के प्रयोग को भी अति लाभकारी माना गया है। साथ ही आयुर्वेदिक ग्रथो में वर्णित पंचकर्म भी इसमे अत्यन्त कुषलता से कार्य करता है। मधुमेह रोगी के लिए गुरु अन्न एवं नियमित योग अभ्यास भी निर्देशित है। अतः मधुमेह की चिकित्सार्थ हेतु आयुर्वेद एक उत्तम विकल्प है।

डॉ० दीपिका गुसाई
(पी.जी.स्कॉलर),
डॉ० शालिनी पाँवर,
(पी.जी.स्कॉलर)
डॉ० संजय कुमार सिंह (प्रोफेसर)
रोग निदान एवं विकृति विज्ञान
विभाग, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

आयुर्वेद में मेदोरोग और हाइपरलीपिडेमिय की अवधारणा

आयुर्वेद एक प्राचिन भारतीय चिकित्सा प्रणाली है, जो शरीर के स्वास्थ्य और रोगों के लिए एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करता है। इसमें शरीर के विभिन्न धातुओं और दोषों के असंतुलन के कारण होने वाले रोगों की पहचान की जाती है। मेदोरोग और हाइपरलीपिडेमिया आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्याएँ हैं, जिनकी समझ और उपचार से शरीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। इस लेख में हम इन दोनों अवधारणाओं को समझेंगे और उनके आयुर्वेद दृष्टिकोण पर चर्चा करेंगे।

मेदोरोग (मेद का रोग)

मेदोरोग, जिसे आयुर्वेद में मेदधातु का असंतुलन भी कहा जाता है, एक ऐसा रोग है, जिसमें शरीर में मेद (वसा) की अधिकता हो जाती है। मेदधातु शरीर के लिए आवशयक है, लेकिन इसका असंतुलन कई स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है।
आयुर्वेद के अनुसार, मेदोरोग की मुख्य विशेषताए हैं -

- **मोटापा और अवसाद-** मेदोरोग के कारण शरीर में अतिरिक्त वसा जमा हो जाता है, जिससे मोटापा और अवसाद की समस्याएँ उत्यन्न होती हैं।

- **वात और कफ दोष का असंतुलन-** मेदोरोग में वात और कफ दोष का असंतुलन प्रमुख भुमिका निभाता है। कफ दोष कि अधिकता वसा के संचय को बढ़ावा देती है, जबकी वात दोष की कमी इसे शरीर से बाहर निकलने में बाधा डालती है।

- **जीवनशैली और आहार-** असंतुलित आहार, अत्यधिक तले-भुने, मीठे, भारी खाद्य पदार्थ, और निष्क्रिय जीवनशैली मेदोरोग के मुख्य कारण है

हाइपरलीपिडेमिया (लिपिड असंतुलन)

हाइपरलीपिडेमिया, जिसे सामान्यः रक्त में उच्च कोलेस्टॉल और ट्राइग्लिसराइडस के स्तर के रुप में जाना जाता है, एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है। आयुर्वेद में, इसे मेदधातु और रक्त में लिपिड (वसा) के असंतुलन के रुप में देखा जाता है। हाइपरलीपिडेमिया की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है

- **रक्त में वसा का उच्च स्तर-** हाइपरलीपिडेमिया में रक्त में कोलेस्टॉल और ट्राइग्लिसराइडस का स्तर बढ़ जाता है, जो हृदय रोग, मधुमेह, और उच्च रक्तचाप का जोखिम बढ़ाता है।
- **अवांछित आहार और जीवनशैली:** अत्याधिक वसायुक्त आहार, निष्क्रिय जीवनशैली, और तनाव हाइपरलीपिडेमिया को बढ़ावा देते है।
- **आयुर्वेद दृष्टिकोण:** आयुर्वेद के अनुसार, हाइपरलीपिडेमिया का इलाज शरीर के दोषों और धातुओं को संतुलित करने के माध्यम से किया जाता है, इसमें औषधियां जैसे अर्जुन की छाल, पिप्पली, गुडूची, गुग्गुल, अलसी, आंवला आदि उपयोग हो सकता है।

आयुर्वेद में मेदोरोग और हाइपरलीपिडेमिया का अध्ययन शरीर की धातुओं और दोषों के असंतुलन को समझने में सहायक है। रोगों की पहचान और उपचार में आयुर्वेद दृष्टिकोण एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो आहार, जीवनशैली और औषधियों के संतुलन पर आधारित होता है। सही आहार, नियमित व्यायाम और आयुर्वेदिक औषधियों के उपयोग से मेदोरोग और हाइपरलीपिडेमिया का प्रभावी प्रबंधन संभव है, जिससे व्यक्ति की समग्र सेहत में सुधार हो सकता है।

आयुर्वेद में, मेदोरोग का उपचार दोषों को संतुलित करने, आहार में बदलाव पर आधारित होता है। आयुर्वेदिक औषधियाँ जैसे त्रिफला, गोक्षुर और शिलाजीत मेदोरोग में सहायक हो सकती है। तथा जीवनशैली में सुधार जैसे नित्य व्यायाम करना, संतृप्त वसा (रेड मीट और फुल फैट डेयरी उत्पादों आदि) युक्त खाद्य पदार्थों से बचना सहायक होता है।

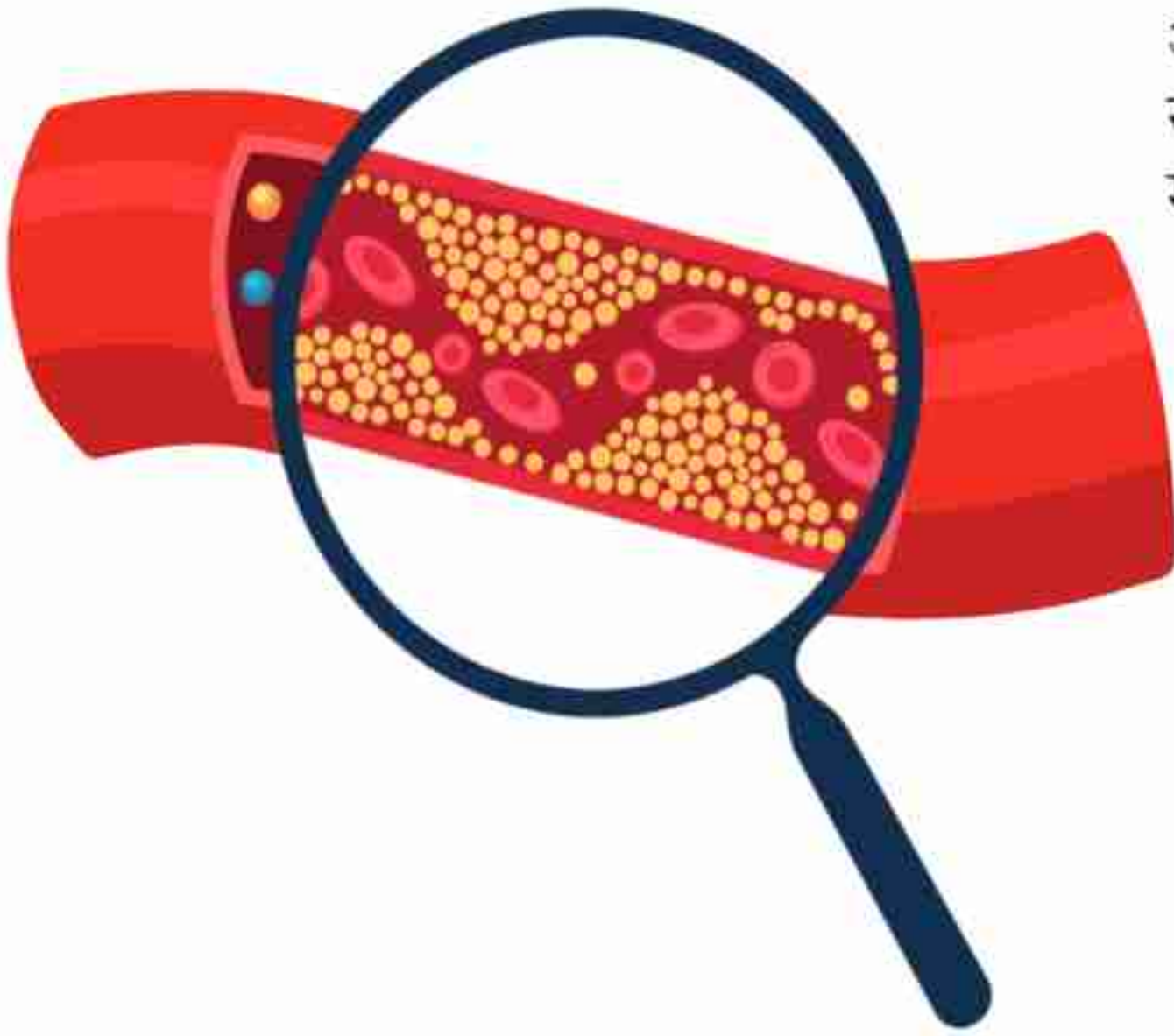

डॉ० नीतू भट्ट (पी.जी.स्कॉलर)
डॉ० रूबी रानी अग्रवाल (प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष)
रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

मूत्र सम्बन्धित सामान्य समस्या एवं निदान

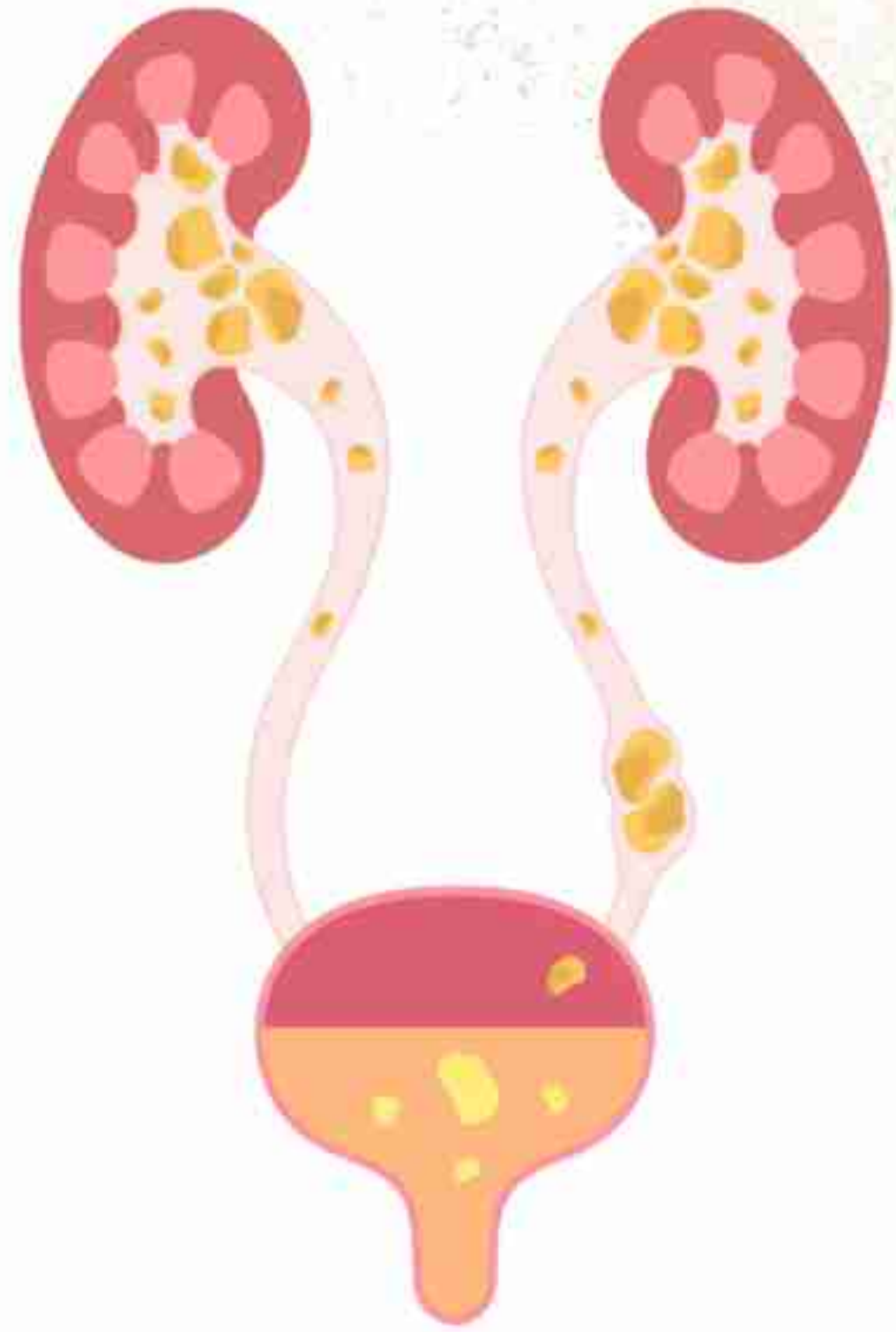

अनियमित जीवन शैली और खराब खान पान की आदतों के परिणाम स्वरूप इन दिनों मूत्रमार्ग का संक्रमण एक बड़ी चिंता का विषय है। इस व्याधि का वर्णन आयुर्वेदिक संहिता मैं भी किया गया है इस संक्रमण मैं मूत्र अत्यंत कष्ट एवम पीड़ा के साथ निकलता है मूत्रमार्ग का संक्रमण, जिसे आमतौर पर यूटीआई के रूप में जाना जाता है, सबसे आम मूत्र समस्याओं में से एक है और यह एक संक्रमण है जो मूत्रमार्ग में होता है। यह संक्रमण अक्सर कवक, बैक्टीरिया और वायरस जैसे रोगाणुओं के कारण होता है

मूत्र संबंधी समस्या के लक्षण क्या हैं ?

मूत्र संबंधी समस्या के लक्षण मूत्र संबंधी समस्या के प्रकार के आधार पर भिन्न-भिन्न होते हैं।
यहां सबसे आम समस्या- यूटीआई के लक्षण नीचे दिए गए हैं।

- बार-बार पेशाब करने की इच्छा होना
- दुर्गंधयुक्त पेशाब
- पेशाब करते समय दर्द या जलन होना
- बुखार या ठंड लगना
- . मांसपेशियों के दर्द
- उल्टी
- पीठ के निचले हिस्से या पेट के निचले हिस्से में दबाव या ऐंठन।

मूत्र संबंधी समस्याओं के कारण क्या हैं?

मूत्र संबंधी समस्याएं अक्सर तब होती हैं जब मूत्र पथ कवक, बैक्टीरिया या वायरस जैसे रोगाणुओं से संक्रमित होता है। यहां मूत्र संबंधी समस्याओं के कुछ कारण बताए गए हैं

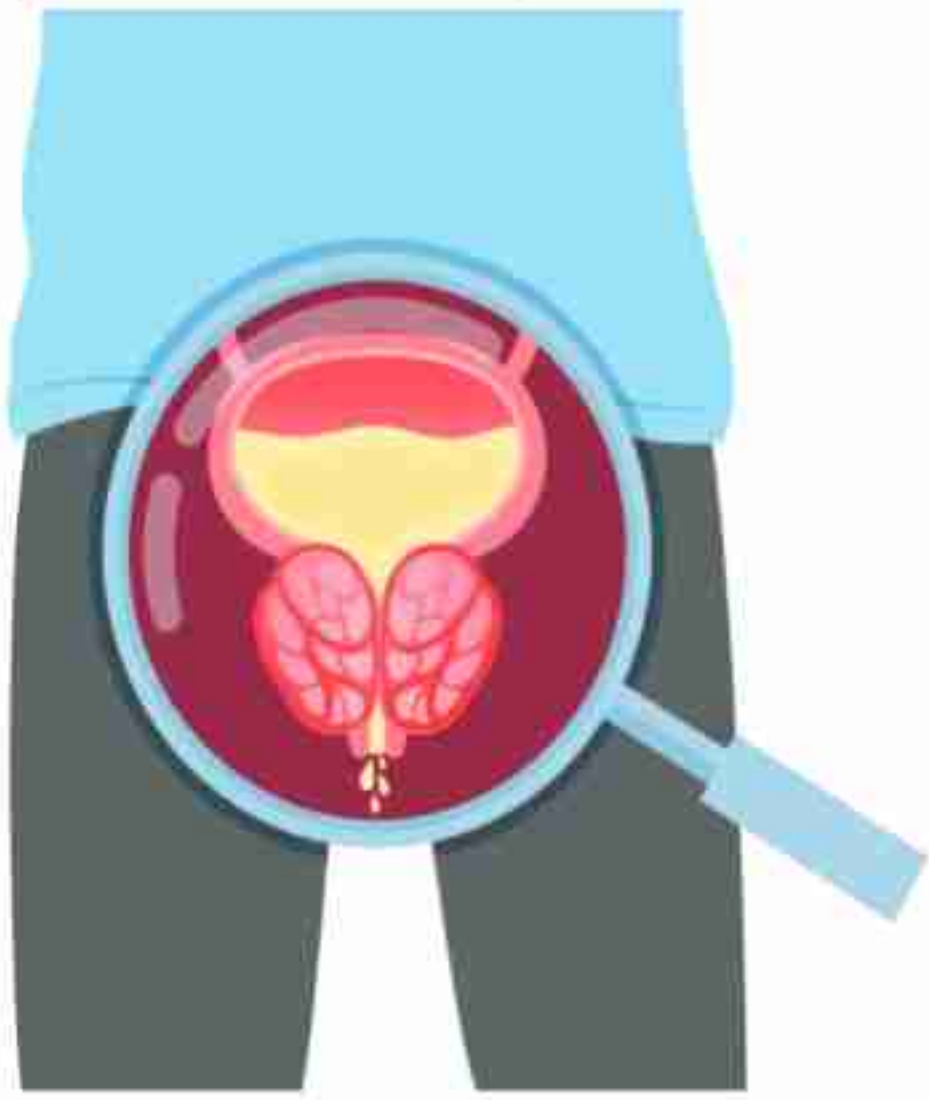

- कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली
- पुरुषों में बढ़ा हुआ प्रोस्टेट
- शुक्राणुनाशक में लेपित गर्भनिरोधक डायाफ्राम का उपयोग करना।
- मधुमेह
- कुछ अन्य स्थितियाँ जो मूत्र पथ में बाधा डालती हैं उदाहरण के लिए, गुर्दे की पथरी।

आप मूत्र संबंधी समस्याओं को कैसे रोक सकते हैं?

आप कई तरीकों से मूत्र संबंधी समस्याओं को रोक सकते हैं। उनमें से कुछ में शामिल हैं

- बार-बार पेशाब करना
- मूत्राशय में जलन पैदा करने वाले तरल पदार्थों से परहेज करें। उदाहरण के लिए, कैफीन या अल्कोहल
- खूब पानी पीना
- जननांग क्षेत्र को साफ रखना
- अपने जननांग क्षेत्रों में तेल के उपयोग से बचें।

- सेक्स के तुरंत बाद पेशाब करना
- टैम्पोन के बजाय मासिक धर्म कप या सैनिटरी पैड जैसे बेहतर, स्वच्छ उत्पादों का उपयोग करना
- सूती कपड़े पहनना जो आरामदायक और ढीले होंय मूत्रमार्ग के आसपास के क्षेत्र को सूखा रखना

मूत्राशय संक्रमण का खतरा किसे है?

किसी को भी मूत्राशय का संक्रमण हो सकता है। हालाँकि, पुरुषों की तुलना में महिलाएं इस स्थिति के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। इसका कारण यह है कि महिलाओं का मूत्रमार्ग छोटा होता है। इससे बैक्टीरिया के लिए मूत्राशय तक पहुंचने का रास्ता आसान हो जाता है।

- आयु
- स्थिरता
- गर्भावस्था
- मधुमेह
- आंत्र असंयम
- संकुचित मूत्रमार्ग
- अपर्याप्त तरल पदार्थ का सेवन
- मूत्र अवरोध, यानी मूत्रमार्ग या मूत्राशय में रुकावट
- मूत्र प्रतिधारण

मूत्र संबंधी रोग आम हैं और ज्यादातर लोग अपने जीवन मैं इनमे से कुछ बीमारियों का अनुभव करते हैं मूत्र संबंधी बीमारियां साझा करने मैं शर्मनाक हो सकती हैं लेकिन आपको याद रखना चाहिए की आप अकेले नही है मूत्र संबंधी बीमारी के लक्षण गंभीर भी हो जाते है इसलिए डॉक्टर से बात करें और अपनी जीवन शैली को रोग मुक्त बनाए।

डॉ० सोनू (पी.जी.स्कॉलर)
डॉ० रूबी रानी अग्रवाल (प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष)
डॉ० शशि कांत तिवारी (असिस्टेंट प्रोफेसर)
रोग निदान एवं विकृति विज्ञान विभाग, ऋषिकुल परिसर,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय

आयुर्वेद संहिताओं में कैंसर के निदान एवं चिकित्सा के मूल तत्व

वैदिक काल में कैंसर परिचय

अथर्ववेद काल में कैंसर रोग का वर्णन "बलास "नाम से प्राप्त होता है।वाजसनेयि संहिता में भी यह शब्द प्राप्त होता है, इसे एक रोग विशेष माना गया है, यह कौन सा रोग है यह स्पष्ट नही किया गया है श्री सायणाचार्य ने बलास शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह क्षय है या शोष रोग के लिए व्यवहार में हुआ है आधुनिक विद्वान श्री जिमर ने भी श्री सायणाचार्य जी के मत का समर्थन किया है।

- वेद में बलास के निम्न स्थान निर्दिष्ट किये गये है (1)

1- हृदय
2- पर्व
3- अस्थि
4- दोनों कक्षा
5- मुष्क

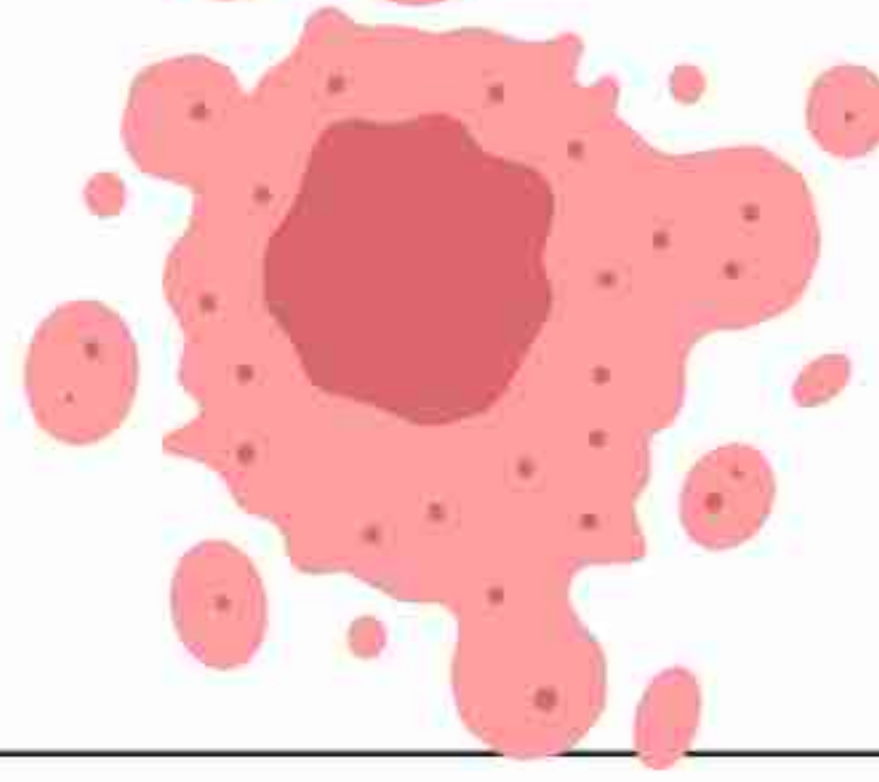

सुश्रुत संहिता में गलरोगो में बलास नामक रोग का वर्णन मिलता है -कफ और वात मिलकर अत्यधिक बढ़कर कंठ में वृद्धि कर शोफ को पैदा करते हैं।

यह बहुत कष्टकारी और मर्म का छेदन करने वाला रोग है अर्थात इसमें तीव्र शूल होता है

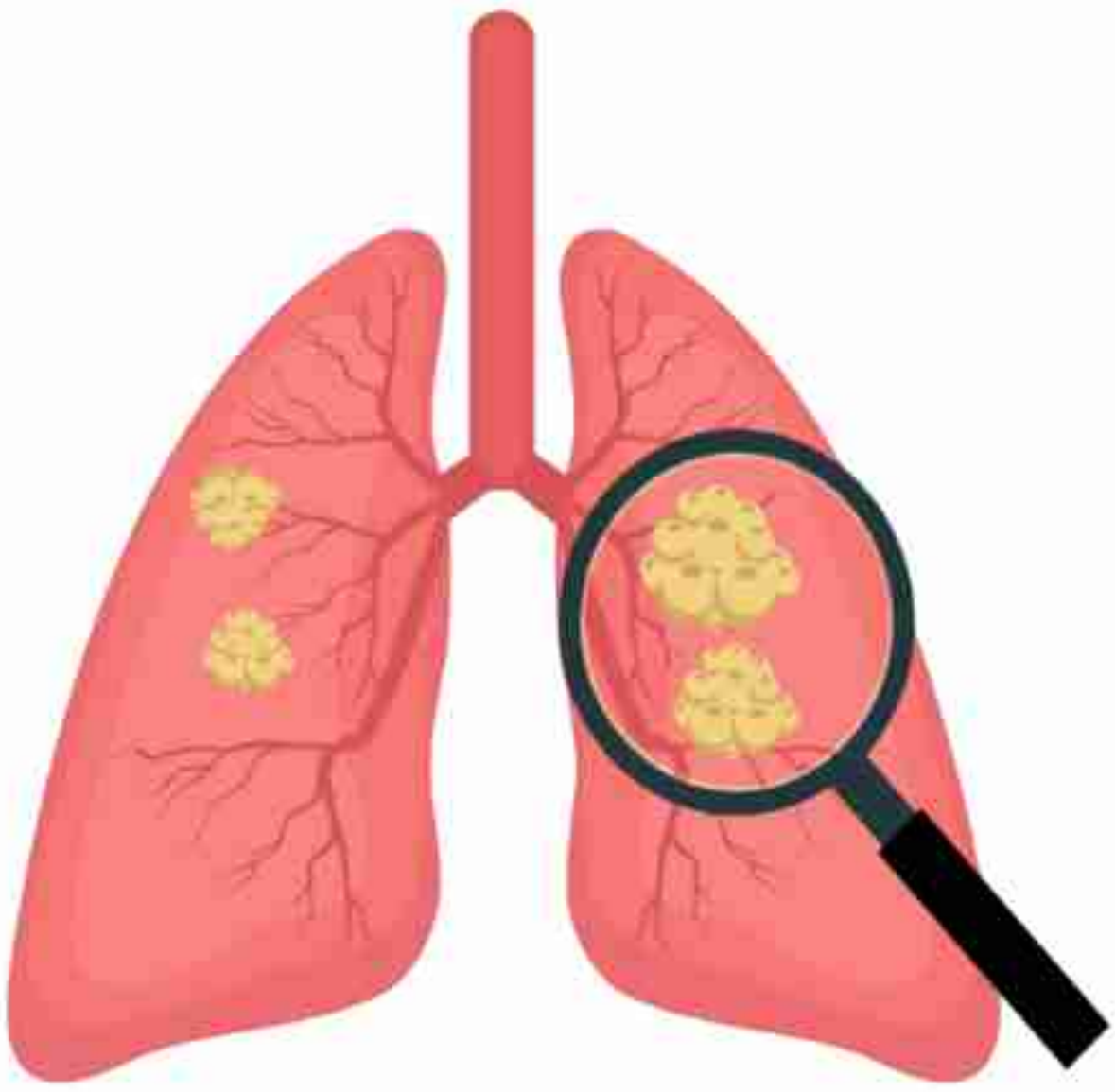

शरीर में जब किसी भी रूप में विषाक्तता लगातार बनी रहती है तो दोष, धातुओं, तथा स्रोतस में अनियमितता होने लगती है अतः सर्वप्रथम अविष और निर्विष की बात करेंगे |

सुश्रुत संहिता के कल्प स्थान में वर्णित है कि वातादि दोषों के प्रसन्नावस्था अर्थात अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाने पर एवं रसादि धातुओं के अपनी प्रकृतावस्था में हो जाने पर, रोगी की अन्न में रूचि होने पर,मन के साथ उचित रूप में रस को ग्रहण करने वाली जिह्वा के होने पर, रोगी का वर्ण, चेष्टाएं एवं इन्द्रियो के प्रसन्न अर्थात स्वाभाविक अवस्था में हो जाने पर चिकित्सक उस रोगी को विष रहित समझें। (2)

इसी श्लोक में डल्हण रचित निबंध संग्रह में विष युक्त जीवित मनुष्य का वर्णन किया है -

वैद्य अविष मनुष्य को जान ले की जो लक्षण कह गए हैं वह जिसमें है वह मनुष्य विष रहित है, इसलिए कहा गया है कि जिसके दोष बढ़े हुए हैं ,धातुएं विकृत अवस्था में स्थित है अन्न की आकांक्षा नही करता, जिह्वा के सूत्र क्षत हो गए हैं तथा उसका वर्ण, इंद्रिय एवं चित्त की चेष्टाएं विरुद्ध हो गई है तो वैध ऐसे व्यक्ति को सविष जान ले। (3)

आयुर्वेद संहिताओं के मूल भूत सिद्धांत का तथ्य ही स्वास्थ्य या रोग की स्थिति निर्धारित करने में महत्वपूर्ण है। मानव शरीर त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) से बना है। वात, पित्त और कफ के संतुलन को सुनिश्चित करने पर ही श्रेष्ठ स्वास्थ्य और असमानता ही रोग का कारण बनता है।

कैंसर की सम्प्राप्ति विभिन्न कारणों से होती है, जैसे विषाक्त पदार्थो के बार- बार सेवन , खाद्य पदार्थों में ही विषाक्तता,पर्युषित खाद्य(बासी भोजन),कीटनाशक प्रयोग युक्त भोजन, शराब, और तंबाकू के रूप में विषाक्तता जो पित्त को प्रकुपित करती हैं। कोशिका स्तर पर बढ़ी हुई पित्त माइक्रो इन्फ्लैमेटरी परिवर्तनों का कारण बन सकती है, जो एक सेलुलर मेटाबोलिज्म (भूताग्नि) को पीलू पाक और पिठर पाक न्याय के आधार पर अग्नि के मूल गुणों को परिवर्तित करती रहती है।
कोशिका स्तर पर अग्नि के परिवर्तन से ही कैंसर कोशिकाओं की चयापचय गतिविधि को बढ़ावा मिलता है जो कोशिका के प्राकृतिक संतुलन को परेशान करता है।

आयुर्वेदिक विवेचना के आधार पर कैंसर का मूल पित्तदोष के उत्तेजक कारक से है जबकि वात सक्रिय दोष है और असामान्य सेल डिवीजन और कैंसर में मेटास्टेसिस के परिवर्तन की प्रक्रिया में शामिल है। कफ दोष में जल और पृथ्वी महाभूत तथा कम परिवर्तन के कारण कोशिकाओं के असामान्य विकास एवम घातक व्यवहार के लिए ज़िम्मेदार है। यद्यपि ये त्रिदोषजविकार है जिसमें असामान्य वात, पित्त और कफ के संचय , प्रकोप और शमन के कारण यह अपने प्रसार की क्षमता रखता है अगर इस तथ्य को शुरू से देखे तो वात पित्त और कफ का निर्माण भी पंचमहाभूत से हुआ है।
आचार्य सुश्रुत ने गर्भ के निर्माण में बताते हुए गर्भ जब चेतन से युक्त अर्थात जिसमें चेतना अवस्थित होती है उसे वायु विभक्त करता है, तेज इसका पाक करता है ,जल इसका क्लेदन करता है ,पृथ्वी इसका संगठन करती है और आकाश इसको बढ़ाता है, इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता हुआ यह गर्भ जब हाथ पैर जिह्वा नासिक कर्ण तथा नितंब आदि अंग से युक्त होता है तब इसे शरीर नाम से कहा जाता है। इस शरीर के छह अंग होते हैं चार शाखाएं, पांचवा मध्य भाग तथा छठा शिर है (4)

आचार्य डल्हण ने इसकी टीका में कहा है उस गर्भ का विभाजन दोष धातु मल अंग प्रत्यंग रूप में वायु करता है और तेज उसे गर्भ को पकाता है यह एक रूप से दूसरे रूप में बढ़ता रहता है ।जल विभाग का परिणाम करने वाले वायु एवं अग्नि के द्वारा शोषण करने पर भी जल गर्भ में क्लेदन अथवा आद्रता उत्पन्न करता है ।पृथ्वी उस गर्भ में कठोरता उत्पन्न करती है। जल के द्वारा जो गीला हो जाता है उसे कठिन मूर्तिमान बना देती है। (5)

इस आधार पर हम देखते हैं कि कोशिका स्तर पर वायु महाभूत ही कोशिका के स्वास्थ्य, विखंडन तथा मृत्यु का कारण है। वैदिक साहित्य में वात की संख्या 5,या10 या,49 भी बताई गई हैं अर्थात इतने तरह के रासायनिक परिवर्तन कोशिका स्तर पर करने में वात ही जिम्मेदार है

- **अग्नि महाभूत कोशिका स्तर पर पाचन, चयापचय, उर्जा के निर्माण,ओज का नियमन, इम्यूनिटी, आदि का जिम्मेदार है।**
- **जल महाभूत कोशिका स्तर पर जल के स्तर को नियमित करना,तथा पोषक**
- **तत्वों का आदान-प्रदान करने का जिम्मेदार है।**

- पृथ्वी महाभूत कोशिका के आकार को नियमित तथा कोशिका के सभी तत्वों के नियमन के लिए जिम्मेदार है।
- इस आधार पर यह तय है कि पंचमहाभूत तथा इनसे निर्मित त्रिदोष तथा इनके लक्षणों के आधार पर ही कैंसर के रोग तथा लक्षणों की पहचान करने में सक्षम होंगे।

ऋतुओं के आधार पर, दिनचर्या के असमानता के कारण या रोग होने पर त्रिदोष 6 अवस्थाओं से गुजरता है जिसे षट -क्रियाकाल कहा जाता है।
संचय, प्रकोप,प्रसर,स्थानसंश्रय,व्यक्तावस्था,तथा भेदावस्था है। (6)
उपरोक्त षट -क्रियाकाल के स्तर पर रोग अपने नामकरण को बदलता रहता है। दोष जिस अवस्था में है उसी अवस्था में चिकित्सा कर देनी चाहिए।

जिस प्रकार पंक्षी अपनी छाया से अलग नही हो पाता है उसी प्रकार कोई भी रोग वात पित्त और कफ से अलग नही हो सकते है |अतः रोग के नामकरण पर ध्यान न देकर उसके निदान,लक्षण तथा सम्प्राप्ति पर ध्यान देना चाहिए।
आचार्य चरक ने त्रिशोथीय अध्याय में कहा है अर्थात रोगों को नाम से न जानने वाला वैद्य कभी भी चिकित्सा कार्य में लज्जा ना करें। सभी रोगों की नाम द्वारा स्थिति नही है। कोई एक दोष कारण विशेष से कुपित होकर अन्य स्थान पर पहुंचकर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर देता है, इसलिए रोग के स्वभाव को उसके अधिष्ठान को ,उसके भेद को और रोग के विशेष कर्म को जानकर ही चिकित्सा कार्य करना चाहिए। जो वैद्य इन तीन बातों को जानकर चिकित्सा का कार्य ज्ञानपूर्वक उचित रूप से करता है वह चिकित्सा कार्य में मोहित नही होता ,वह भूल नही करता है (7)

अतः त्रिदोष , प्राणवह स्रोतस आदि 13 स्रोतस ,सप्तधातु, सप्तधराकला, सप्त त्वचा ,107 मर्म आदि के आधार पर तथा शास्त्र में वर्णित लक्षणों के आधार पर कैंसर की सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा की जा सकती है।

अगले भाग में कैंसर से संबंध पर उपरोक्त त्रिदोषादि कारणों एवम उसके निदान एवम चिकित्सा पर चर्चा करेंगे। To Be Continued...

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 आथर्ववेद 6.127.2
2 प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्त्राभिकाङ्क्षं समसूत्रजिह्वम् |
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् || (सु . क . 6)
3 "प्रवृद्धदोषं विकृतिस्थधातुमनत्रकाङ्क्षं क्षतसूत्रजिह्वम्| विरुद्धवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं
वैद्योऽवगच्छेत् सविषं मनुष्यम्"- इति| (सु . क . 6)

4 शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितं 'गर्भ' इत्युच्यते |
तं चेतनावस्थितं वायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवर्धयति;
एवं विवर्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितम्बादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा 'शरीरं' इति सञ्ज्ञां लभते |
तच्च षडङ्ग- शाखाश्चतस्रो, मध्यं पञ्चमं, षष्ठं शिर इति ||३|| (सु. शा. 5)
5 तं वायुर्विभजति दोषधातुमलाङ्गप्रत्यङ्गविभागेन; तेज एनं पचति
रूपाद्रूपान्तरेणावस्थानं प्रापयति; आपः क्लेदयन्ति
विभागपरिणामकारिणोरनिलानलयोः शोषणेऽप्यार्द्रतां जनयन्ति; पृथिवी संहन्ति
अद्भिः क्लिन्नमपि कठिनं मूर्तिमत् करोति; 'संहरति' इत्यन्ये पठन्ति; तन्न, सम्पूर्वस्य
हृञो विनाशार्थत्वात्; आकाशं विवर्धयति
अनिलानलविदारितस्रोतसामाध्मापनेनोर्ध्वमधस्तिर्यग्विवर्धितमवकाशदानेन
विवर्धयति| मध्यमिदं कण्ठादिगुदपर्यन्तम्||३|| (सु. शा. 5)
6 सञ्चयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् | व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां सभवेद्भिषक् ||३६|| (सु.सू.21)
7 विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन|न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः||
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः|स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् [१]||
तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च|समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत्|
यो ह्येतत्त्रितयं ज्ञात्वा कर्माण्यारभते भिषक्|ज्ञानपूर्वं यथान्यायं स कर्मसु नमुह्यति|(च.सू. 18 /44-47)

डॉ अजीत तिवारी (एमडी अध्येता)
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर
/आ०आ०म० डीना पानी,
अल्मोड़ा

स्वस्थ और आयुर्वेद दृष्टीकोण

आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ एक व्यापक और गहन अवधारणा है जो केवल शारीरिक स्वस्थ तक सीमित नही
है अपितु इसमें मानसिक, अध्यात्मिक और सामाजिक स्वस्थ भी सम्मिलित है आयुर्वेदिक ग्रंथों में स्वस्थ की परिभाषा विस्तार से दी गई है जिसमें शरीर मन आत्मा और इंद्रियों का संतुलन महत्वपूर्ण है। स्वस्थ जिसका शाब्दिक अर्थ है स्व में स्थित होना अर्थात शरीर मन आत्मा और इंद्रियों का सही संतुलन और उनका उचित कार्यशील होना ही स्वस्थ है बल्कि शरीर में किसी रोग का न होना ही स्वस्थ नही है |
आयुर्वेदिक ग्रंथों में स्वस्थ शब्द का वर्णन करते समय सुश्रुत संहिता में निम्नलिखित श्लोक का उल्लेख मिलता
है:

"समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥"

इस श्लोक का अर्थ है कि एक व्यक्ति को स्वस्थ तभी माना जाता है जब उसके शरीर के तीन दोष (वात पित्त कफ) संतुलित अवस्था में हों अग्नि (पाचन अग्नि) संतुलित हो धातु (शारीरिक ऊतक) सही मात्रा में हों तथा मल (मल मूत्र और पसीना) का सही तरीके से निष्कासन हो और आत्मा इन्द्रिय (इन्द्रियाँ) और मन प्रसन्न हो।

समदोषः (त्रिदोषों का संतुलन)

आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर तीन मुख्य दोषों (वात पित्त कफ) से निर्मित होता है। ये दोष हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। जब ये तीन दोष संतुलित अवस्था में होते हैं, तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

- **वात दोष** - यह शरीर की सभी गतिशील गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करता है। यह संचार गति श्वसन और तंत्रिका तंत्र के कार्यों को नियंत्रित करता है।
- **पित्त दोष** - यह पाचन, चयापचय, और ऊर्जा उत्पादन से संबंधित है। यह शरीर में रासायनिक क्रियाओं और पाचन शक्ति को नियंत्रित करता है।
- **कफ दोष** - यह शरीर की संरचना प्रतिरोधक क्षमता और स्थिरता से संबंधित है। यह शारीरिक ताकत जलयोजन और प्रतिरक्षा प्रणाली को नियंत्रित करता है।

समाग्निः (अग्नि का संतुलन)

अग्नि का मतलब है पाचन अग्नि जो भोजन को पचाने में मदद करती है। इसे जीवन का आधार माना गया है। समाग्नि का अर्थ है कि व्यक्ति का पाचन तंत्र सही से कार्य कर रहा हो और भोजन का सही पाचन हो रहा होयदि अग्नि मंद है या तीक्ष्ण है तो वह भोजन का सम्यक पाचन नही कर सकती जो सभी रोगों का मूल कारण है |

समधातु (धातुओं का संतुलन)

धातु का मतलब है शरीर के ऊतक। आयुर्वेद में सात मुख्य धातुओं का वर्णन किया गया है - रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र। इन सभी धातुओं का सही मात्रा में होना और सही तरीके से कार्य करना स्वास्थ का संकेत है।

सममलक्रिया (मल का सही निष्कासन)

मल का सही निष्कासन भी स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। आयुर्वेद में तीन मुख्य मल (विष्ठा मूत्र और स्वेद) का उल्लेख किया गया है। इनका सही समय पर और सही मात्रा में निष्कासन होना चाहिए।

"प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः (आत्मा इन्द्रियों और मन की प्रसन्नता)"

स्वास्थ्य का अंतिम और महत्वपूर्ण पक्ष आत्मा इन्द्रियों और मन की प्रसन्नता है। मानसिक और आत्मिक संतुलन और प्रसन्नता भी आवश्यक है।

- आत्मा - आत्मा का मतलब है आंतरिक चेतना और जीवन शक्ति। यह व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सूचक है।
- इन्द्रिय - इन्द्रिय मतलब है शरीर की पाँच इन्द्रियाँ (नेत्र कर्ण नासिका रसना त्वचा)। इनका सही तरीके से कार्य करना भी स्वास्थ्य का हिस्सा है।
- मन - मानसिक संतुलन और शांति भी स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मन की प्रसन्नता और संतुलन शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

निष्कर्ष

स्वास्थ की आयुर्वेदिक परिभाषा व्यक्ति को एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक, आत्मिक और सामाजिक स्वास्थ्य को भी महत्व देती है। स्वास्थ एक गतिशील और संपूर्ण अवस्था है जिसे बनाए रखने के लिए सभी पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार आयुर्वेद हमें जीवन जीने की एक समग्र विधि प्रदान करता है जिससे हम अपने संपूर्ण स्वास्थ्य को संतुलित और सुरक्षित रख सकते हैंयह परिभाषा आधुनिक चिकित्सा के दृष्टिकोण से भी अधिक व्यापक और गहन है।

जो हमें सिखाती है कि स्वस्थ रहना केवल बीमारियों से बचाव नही है बल्कि एक संतुलित और सुखद जीवन जीने का तरीका है।

संदर्भित ग्रन्थ – सुश्रुत संहिता

डॉ मनोज सिंह रघुवंशी
बी. ए . एम. एस. एम् . डी.
चिकित्साधिकारी आयुष विंग अति. प्रा . स्वा. केंद्र पनुवानौला अल्मोडा

आयुर्वेद: प्रकृति से संतुलित जीवन की राह

निसर्ग की अमूल्य देन आयुर्वेद का विज्ञान
जीवन को संतुलित करे तन-मन का ये ज्ञान॥
त्रिदोष की संजीवनी वात पित्त और कफ
संतुलन में रखे इन्हें हो हर दिन सुखद सफर॥
पंचमहाभूत का संगम पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश
इनके मेल से निर्मित है हमारा सारा आभास॥
धनवन्तरी की अनमोल धरोहर जड़ी-बूटियों का भंडार
प्रकृति की हर औषधि में छिपा है रोगों का उपचार॥
आहार और विहार का पालन करे जो सच्चा
वही पाता है जीवन में आरोग्य का रास्ता अच्छा॥

दिनचर्या और ऋतुचर्या जीवन का ये मंत्र
आयुर्वेद है सिखाता कैसे हो आरोग्य तंत्र॥
अंत में यही सिखाता आयुर्वेद का सार
प्रकृति से जुड़ कर ही पाओ जीवन का सच्चा उपहार॥

डॉ मनोज सिंह रघुवंशी
बी. ए . एम. एस. एम् . डी.
चिकित्साधिकारी आयुष विंग अति. प्रा . स्वा. केंद्र पनुवानौला अल्मोडा

आयुष एवं आयुष शिक्षा विभाग

Ayur- Tarangini

AYUSH and AYUSH EDUCATIONAL Department E- Magazine

Special Thanks to the State Program Managment Team of

National AYUSH Mission, Uttarakhand

Vaidya K.K Pandey (Mission Co-Ordinator, NAM)

Dr. Akshat Katiyar (Consultant, NAM)

Dr. M.S. Rawat (Consultant, NAM)

Mr. Satish Chandra Sati (HMIS Manager, NAM)

Mr. Pradeep Narayan Kothari (Account Manager, NAM)

AUGUST 2024